श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ अप्रैल—१९९६ अंक—४

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री जी. के. दीक्षित, वरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन- लुर्माडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव— लुर्माडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुर्माडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुर्माडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२, महावोर वाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुर्माडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल - नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश विहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—वखरिया (विहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नईदिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा(म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र०)
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये विना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१५ अप्रैल—१९९६ अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ॰ केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य –	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति –	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

रुपये से दाल-रोटी भर का प्रबन्ध हो सकता है। उसे अपने जीवन का चरम उद्देश्य मत समझ बैठो।

(२)

लोगों को भजन में लगाने की कोशिश न कर यदि कोई स्वयं ही ईश्वर को भजता रहे तो उसी से काफी प्रचार होता है। जो स्वयं इस जन्म-मरण के फेरे से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करता है वही ठीक-ठीक प्रचारक है। जो स्वयं मुक्त होता है, उसके निकट शिक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुक होकर दूर-दूर से सैकड़ों लोग आने लगते हैं। गुलाब के खिलने पर भौंरे अपने आप आ जुटते हैं।

(३)

बद्धजीवों—संसारी जीवों—को किसी तरह होश नहीं आता। वे इतना दुःख भोगते हैं, इतना धोखा खाते हैं, इतनी विपदाएँ झेलते हैं, फिर भी वे नहीं सोचते—उन्हें चैतन्य नहीं होता।

ऊँट कटीली घास खाना बहुत पसन्द करता है। किन्तु जितना खाता है उतना ही मुँह से खून गिरता है, फिर भी वह कटीली घास खाते ही रहता है, उसे नहीं छोडता। संसारी लोग भी इतना शोक-ताप पाते हैं, परन्तु कुछ ही दिनों के अन्दर सब कुछ भूलकर ज्यों-के-त्यों हो जाते हैं। बीबी गुजर गई या बदचलन निकली, फिर भी वह दूसरी शादी कर लेता है। बच्चा चल बसा, कितना शोक हुआ, पर कुछ ही दिनों में सब भूल बैठता है। बच्चे की वही माँ, जो शोक के मारे अधीर हो रही थी, कुछ दिनों बाद फिर केश सँवारती है, गहने पहनती है। ऐसा व्यक्ति बेटी के ब्याह में सारा धन खर्च कर तबाह हो जाता है, फिर भी उसके घर हर साल बच्चा पैदा होते ही जाते हैं।

(४)

ईश्वर दर्शन कर लेने के बाद मनुष्य पूर्णरूप से परिवर्तित हो जाता है।

विवेक-गीत

—विदेह

(१)

(बहार कहरवा)

नमो नरेन्द्र विवेकानन्द, त्रिभुवन पावनकारी।
ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-प्रेम से, भूषित नरतनु धारी।।

गुरु सन्देश लिए अन्तर में,
निर्भय तुम विचरे जग भर में।
उपनिषदों के ज्ञानामृत से, जनमन सिंचनकारी।।

देख दीनजन की दुर्गति को
करने को निस्तार व्यथित हो
सेवा का नवधर्म सिखाया, दुःख-ताप-भय हारी।।

(२)

(विहाग कहरवा)

वीर विवेकानन्द महान।
कृष्ण समान प्रबल कर्मठता, बुद्ध-हृदय शंकर का ज्ञान।।
चिर समाधि के गिरि शिखरों से, द्रवित हुए तुम आर्त स्वरों से;
करुणा-गंगा होकर उतरे, शीतल करने जन मन प्राण।।
धर्म कर्म का मार्ग बताया, पूरब पश्चिम मेल कराया;
वेद-सुधा का सिंचन करते, निर्भय विचरे सिंह समान।।
दीन दुखी पापी पतितों में, देख ब्रह्म ब्राह्मण-दलितों में;
बतलाया हमको इन सबकी, पूजा करो सहित सम्मान।।

श्री रामकृष्ण वचनामृत का जादू

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

[श्री रामकृष्ण का लीलामय जीवन महत्तम घटनाओं से भरा था। फरवरी १८८२ से २४ अप्रैल १८८६ (श्रीरामकृष्ण के लीला संवरण के कुछ ही महीने पूर्व तक) उनके अमृतोपम वचनों को श्री 'म' प्रायः नित्य अपनी डायरी में लिपिबद्ध किया करते थे। वस्तुतः 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' का वही मूल लेखन-काल है। उसके लेखन के एक सौ दस वर्ष २४ अप्रैल १९९६ को पूरे हो रहे हैं। इस एक सौ दसवें वर्ष के उपलक्ष्य में इस ग्रंथ की महिमा एवं गरिमा पर बड़ा ही रोचक प्रकाश डाला है। रामकृष्ण आश्रम, राजकोट में कार्यरत, श्रीरामकृष्ण ज्योत के सम्पादक स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज ने। यह लेख पाठकों के लिए विशेष लाभप्रद एवं प्रेरक सिद्ध होगा, यह आशा है। —सं०]

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ('म') द्वारा मूल बंगला में रचित तथा श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा हिन्दी में अनूदित यह पुस्तक आज केवल हिन्दी जगत् में ही नहीं, पूरे संसार में जादू-सा प्रभाव डाल रही है। देश की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं—हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़ आदि तथा विदेशी कई भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, जापानी, स्पेनिश आदि में इस पुस्तक की लाखों प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं।

कुछ वर्षों पूर्व जब मूल बंगला ग्रन्थ 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का प्रकाशनाधिकार लेखक के दिवंगत होने के पचास वर्षों बाद, उनके उत्तराधिकारियों के पास से जाता रहा, तब इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए १६ और प्रकाशक प्रतियोगिता में कूद पड़े, और इस ग्रन्थ की अप्रत्याशित बिक्री ने प्रकाशन जगत् में तहलका मचा दिया। उस समय दक्षिण भारत से प्रकाशित एक अंग्रेजी पत्रिका ने एक रोचक लेख छापा था, जिसका शीर्षक था—'Ramakrishna outsells Marx' 'बिक्री में श्री रामकृष्ण मार्क्स से बढ़कर !' उक्त लेख के अनुसार पहली जनवरी से चौदह फरवरी १९८३ तक के केवल ४५ दिनों में इस पुस्तक की ढाई लाख प्रतियाँ, जिनका मूल्य लगभग ४५ लाख रुपये होता है, बिक गयीं जो कि "पूरे पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सभी पुस्तकों की पिछले ३ वर्षों की बिक्री से भी अधिक थी।" पश्चिम बंगाल के मार्क्सवादी साहित्य के सबसे बड़े बिक्रेता तथा प्रकाशक 'नेशनल बुक एजेन्सी' के अनुसार मार्क्स तथा एन्जेल्स की बारह पुस्तकों की केवल २००० सेट (प्रति सेट मूल्य केवल ३६ रु० है) प्रतिवर्ष बिकती है। इस लेख के अनुसार मार्क्सवादो लोग, एक धार्मिक ग्रन्थ की इस अप्रत्याशित बिक्री को देखकर दाँतों तले ऊँगली दबा रहे हैं, और बंगाल की राजनीति तथा संस्कृति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, इस पर चिन्तित हो रहे हैं। इस लेख के अन्त में लेखक ने एक रोचक टिप्पणी की है "अतः लाल झंडों तले धार्मिक पुस्तकें अपना प्रभाव क्यों डाल रही हैं यह रहस्य बना हुआ है····शायद बंगाली जनता ज्योति बसु को 'रायटर्स भवन' में तो शासन करने देना चाहती है,

किन्तु अपने हृदय में नहीं। वहाँ तो लगता है उन्हें चाहिए— राधा, कृष्ण तथा रामकृष्ण परमहंस।[१]

अंग्रेजी में जब यह पुस्तक (The Gospel of Sri Ramkrishna) के नाम से प्रकाशित हुई तब अमेरिका में इतनी प्रसिद्ध हुई कि 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' पत्रिका ने अपने सितम्बर १९४९ के अंक में लिखा—"पिछले पच्चीस वर्षों की सर्वोत्तम दार्शनिक पुस्तक थी—'The Gospel of Sri Ramkrishna'[२] सन् १९४८ में अमेरिकन लायब्रेरी एसोसियेशन ने इसे उस वर्ष की पचास सर्वोत्तम पुस्तकों में अग्रणी माना। रॉबर्ट ऑवेलेक द्वारा संपादित 'द पोर्टेब्ल वर्ल्ड बाईब्ल' (पेंगुइन क्लासिक) में इस पुस्तक के लिए बारह पृष्ठ दिये गये हैं।

इस 'वचनामृत' का जादू संसार भर के विद्वानों, मनीषियों तथा विचारकों पर पड़ा है। प्रख्यात इतिहासकार ऑल्डस हक्सले ने अंग्रेजी पुस्तक 'द गॉस्पेल ऑफ श्री रामकृष्ण' की भूमिका में लिखा है—"अपनी योग्यता और परिस्थितियों का समुचित उपयोग कर श्री 'म' ने एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की, जो मेरी जानकारी में सन्त-चरितों में बेजोड़ है। किसी और सन्त को ऐसा सुयोग्य एवं अश्रान्त वॉस्वेल नहीं मिला।"

प्रख्यात फ्रेंच मनीषी रोमां रोलां ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्वामी परमहंस योगानन्द ने अपनी आत्म-कथा (Autobiography a Yogi), में 'वचनामृत' के लेखक के पास से जो प्रेरणा प्राप्त की उसका विशद वर्णन किया है। श्री पॉल ब्रुंटन ने लिखा है कि मास्टर महाशय (श्री 'म') के कारण ही वे बौद्धिक संशयवाद से ऊपर उठकर धर्म में श्रद्धा का भाव प्राप्त कर सके थे।[३]

पुरी के पूर्व शंकराचार्य (जिन्होंने पांच विषयों में एम० ए० किया था तथा वैदिक मैथेमेटिक्स पुस्तक लिखी थी). सन् १९४५ में रामकृष्ण मठ मद्रास में, पधारे थे, तब उन्होंने कहा था—"यह इस शताब्दी का सर्वोत्तम ग्रन्थ है, आधुनिक युग का भागवत है। मैं इस ग्रन्थ को सदैव अपने बिछावन के पास रखता हूँ और इसके कुछ पृष्ठों को पढ़े बिना नहीं सोता।"[४]

श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग पार्षद् स्वामी विज्ञानानन्द महाराज ने एकबार मास्टर महाशय को कहा था –"पूछताछ करने पर मैंने पता लगाया है कि ८० प्रतिशत से अधिक संन्यासियों ने 'वचनामृत' को पढ़कर संन्यास-जीवन अंगीकार किया है।"[५] श्री रामकृष्ण देव के अन्य पार्षदों—स्वामी रामकृष्णानन्दजी, स्वामी शिवानन्दजी, स्वामी प्रेमानन्दजी आदि ने भी इस ग्रन्थ के विलक्षण प्रभाव की प्रशंसा की है। एकबार स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज ने एक भक्त से कहा "मैं तुम्हें एक वाक्य में ब्रह्मज्ञान दूँगा।" भक्त बड़ी आतुरता से इस वाक्य को सुनने के लिए उनके निकट आया। महाराज ने धीरे से कहा—"प्रतिदिन 'वचनामृत' पढ़ो।"

'वचनामृत' के इस अमृत ने असंख्य लोगों को 'अमरत्व' की ओर अग्रसर किया है; जीवन-मृत्यु के चक्र से उबारा है, इतना ही नहीं, मृत्यु के पंजों से भी बचाया है।

श्री रामकृष्ण देव के एक गृही भक्त थे श्री पूर्णचंद्र घोष, जिन्हें श्री रामकृष्ण देव ईश्वर-कोटि

---

१. 'The week' मार्च १३—१९, १९८३

२. प्रबुद्ध भारत : दिसम्बर, १९४८, पृष्ठ : ४९५

३. A Search in Secret India —Paul Brunton, Reder & co. P P. I 81

४. The Kathamrita Centenary Memorial Volume, P P 108

५. 'M—The Apostl and the Evangelist' Part I—P-37

कहा करते थे। एक दिन उन्होंने सांसारिक झमेलों से तंग आकर आत्महत्या करने का निश्चय किया। उसी दिन स्नान करके ठाकुर घर में जाकर श्री रामकृष्णदेव को प्रणाम किया। उन्होंने सोचा— " 'वचनामृत' से कुछ पढ़ते-पढ़ते, भगवान् के वचनों के अमृत का पान करते-करते इस संसार से विदा लूँगा।" उन्होंने जैसे ही 'वचनामृत' पुस्तक खोली, उनकी नजर इस वाक्य पर पड़ी –"पूर्ण है बालक भक्त। ठाकुर (श्री रामकृष्ण) पूर्ण के मंगल के लिए सदा चिन्तित हैं।" मन-ही-मन वे चिल्ला उठे— "यह क्या ? भगवान स्वयं मेरे कल्याण की चिन्ता कर रहे हैं और मैं आत्महत्या करूँगा ? असंभव !" उनका जीवन इस प्रकार 'वचनामृत' ने बचा लिया।

केरल के किसी संभ्रांत परिवार के एक युवक ने सन् १९४० में स्वराज आंदोलन में भाग लिया था। कुछ वर्षों बाद उसने कम्युनिस्ट पार्टी में योग-दान दिया और अपना सर्वस्व पार्टी के लिए दे डाला। देर से उसने विवाह किया, किन्तु गरीबी के कारण पत्नी सहित चार बच्चों का जीवन-निर्वाह करना उसके लिए क्रमशः दुरूह होता गया। पन्द्रह वर्षों तक कम्युनिस्ट पार्टी की सेवा करने पर भी केरल में जब कम्युनिस्ट सरकार बनी तो भी उसके लिए पार्टी ने कुछ नहीं किया। मित्रों की ओर से भी उसे निराशा ही मिली। इस गरीबी की समस्या के साथ जब परिवार की अन्य समस्याएँ आ जुड़ीं तो उसके लिए जीना और भी दूभर हो गया। वह एकदिन आत्महत्या के इरादे से निकल पड़ा। संयोग से वह त्रिवेन्द्रम के रामकृष्ण आश्रम में जा पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट एक संन्यासी से हुई जो उनके पूर्वाश्रम के घनिष्ठ सम्बन्धी थे। दीर्घ पन्द्रह वर्षों के बाद इस प्रकार उनसे मिलकर वह द्रवित हो गया और अपने मन की व्यथा उन्हें कह सुनायी। बात-हो-बात में उसने यह भी बता दिया कि उसने आत्म-हत्या का इरादा पक्का कर लिया है। उस संन्यासी ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए शांत चित्त से इस पर सोचने के लिए कहा और 'वचनामृत' (Gospel) पढ़ने का सुझाव दिया। अनिच्छा होते हुए भी उसने इस सुझाव का पालन किया। छः माह बाद उसने संन्यासी को लिखा कि इस पुस्तक से उसे अपरिमित शांति मिली है और आत्महत्या के घृणित कार्य से वह बच गया है।

त्रिवेन्द्रम के इन्हीं संन्यासी के पास सन् १९६० में एकदिन एन० सी० सी० के एक कर्नल साहब आये। वे भगवती के उपासक थे तथा आश्रम में आया जाया करते थे। उन्होंने उक्त संन्यासी को बताया कि उनके विभाग का एक मेजर अत्यन्त मानसिक तनाव में रहता है तथा प्रायः अपने आपको गोली मार देने की बात करता रहता है। संभवतः उसका वैवाहिक जीवन कष्टमय था। कर्नल साहब ने प्रस्ताव रखा कि एकबार वे उस मेजर को आश्रम में ले आयेंगे ताकि आत्महत्या के घृणित कृत्य से विरक्त होने के लिए वे उसे समझा सकें। संन्यासी ने कहा "देखिए, मुझे नहीं लगता, बातचीत का कोई असर होगा, क्योंकि हम एक दूसरे को पहचानते नहीं हैं। उसे एक बार 'वचनामृत' (Gospel) पढ़ने को कहिए, बाद में उसे जो करना हो, करे। उसे कहिएगा कि उसके मरने से पृथ्वी प्रदक्षिणा करना बन्द नहीं करेगी। किन्तु आत्महत्या करना कायरता तथा महापाप है।"

कर्नल साहब ने कुछ माह बाद उनके पास आकर कहा – "स्वामीजी, 'वचनामृत' ने मेरे मेजर को बचा लिया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद उस मेजर ने मुझसे कहा—"यदि सारा संसार मेरे विरुद्ध हो जाय, तब भी मैं आत्महत्या का महापाप नहीं करूँगा।"

वास्तव से 'वचनामृत' की सृष्टि भी इसी प्रकार की घटना से हुई। वचनामृत के लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म') भी आत्महत्या के इरादे से ही एकदिन घर से निकल पड़े थे। संयोगवश बड़ी दीदी के घर,

वराहनगर में रात्रियापन कर दूसरे दिन रविवार को घूमते-घूमते दक्षिणेश्वर मन्दिर जा पहुँचे थे। वहाँ श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन कर उन्हें प्रतीत हुआ मानो साक्षात् शुकदेव भागवत प्रसंग कह रहे हैं। श्रीरामकृष्णदेव के अमृतमय उपदेशों ने उनके दग्ध चित में शांति का सिंचन किया। उनका जीवन ही परिवर्तित हो गया। उस 'वचनामृत' का पान कर उन्होंने न केवल अपना जीवन बचाया, बल्कि, 'वचनामृत' के माध्यम से और भी असंख्य लोगों को नया जीवन प्रदान किया।

'वचनामृत' के इस जादू की पूर्वघोषणा स्वामी विवेकानन्द ने बहुत पहले ही कर दी थी। सर्वप्रथम इस पुस्तक के कुछ अंश जब अंग्रेजी में प्रकाशित हुए, तब इसे पढ़कर स्वामी विवेकानन्द ने श्री 'म' को आँटपुर से दि० ७ 'फरवरी' १८८६ को पत्र दिया था "मेरा हृदय खुशी से उछल रहा है···आश्चर्य है कि, जिस उपदेशामृत के द्वारा सारी पृथ्वी में शांति का वर्षण होनेवाला है उससे ओतप्रोत एक व्यक्ति को पाकर भी, मैं पागल नहीं हो जाता।"

स्वाभाविक ही मन में प्रश्न उठता है—क्या कारण है, 'वचनामृत' के इस जादू का? इसके कई कारण दिये जा सकते हैं—

१. यह ग्रन्थ अवतारवरिष्ठ श्री रामकृष्णदेव के उन अमृतमय उपदेशों का संग्रह है, जो तप्तजीवों को शांति प्रदान करते हैं, चित्त के कल्मष को दूर करते हैं, सुमंगलकारी तथा सुमधुर हैं, तथा अनन्त ज्ञान के भंडार हैं। श्री 'म' ने स्वयं भी इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीमद्भागवत् के इस श्लोक को उद्धृत किया है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मपापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुविगृणन्ति ये भूरिदा जनाः॥

अर्थात् आपका वचनामृत संसार के ताप से तप्त, मृतप्रायः दग्ध मनुष्यों के लिए जलस्वरूप-जीवनस्वरूप है। ज्ञानी जनों ने इस कथामृत की प्रशंसा की है। यह वचनामृत हमारे कल्मषों-पापों को दूर कर देता है। इसके श्रवण मात्र से ही कल्याण होता है। सौन्दर्य पूर्ण इस कथामृत में अपार आकर्षण है। पुण्यवान लोगों की इस वचनामृत में स्वभाविक रुचि होती है।

२. ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अभूतपूर्व है, क्योंकि किसी भी अवतार या सन्त के उपदेशों का इतना सुविस्तृत तथा सुप्रमाणिक संग्रह कभी नहीं किया गया। श्री 'म' ने स्वयं श्रीरामकृष्णदेव के चरित्रामृत के बारे में प्राप्त सामग्री को तीन भागों में विभक्त किया है—पहली प्रत्यक्ष तथा सुनने के दिन ही लिपिबद्ध, दूसरी, प्रत्यक्ष किन्तु बाद में लिपिबद्ध तथा तीसरी, परोक्ष तथा बहुत बाद में लिपिबद्ध। 'वचनामृत' प्रथम प्रकार की सामग्री से तैयार हुआ है। श्रीरामकृष्ण देव के अपने शिष्यगण, भक्तगण तथा दर्शनार्थियों से जो वार्तालाप होते थे, उन्हें श्री 'म' ने स्वयं सुनने के बाद दैनन्दिनी के रूप में लिपिबद्ध कर लिया था। बाद में वही ग्रन्थाकार रूप में प्रकाशित हुआ।

३. यह केवल सब शास्त्रों का सार ही नहीं, सब शास्त्रों को समझाने का श्रेष्ठ अस्त्र है एवं आधुनिक तथा भावी युगों का सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है।

४. इस ग्रन्थ को समझने के लिए पाठक में बुद्धिमत्ता या अन्य विशेष योग्यता की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि इसकी शैली अत्यन्त सुगम तथा सरल है।

५. विभिन्न भावों, दृश्यों तथा व्यक्तियों का सुन्दर सम्मिश्रण तथा वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है। सन् १८८२ से १८८६ तक इन चार वर्षों के वर्णन में श्री 'म ने श्रीरामकृष्णदेव के १७८ वार्तालापों का वर्णन किया है जिनमें ९१ वार्तालाप दक्षिणेश्वर के मन्दिर में हुए थे तथा शेष श्यामपुकुर, काशीपुर एवं कलकत्ता के अन्य स्थानों पर। लगभग २५०

व्यक्तियों के बारे में इस ग्रन्थ में उल्लेख है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का आयाम अति विस्तृत है।

६. विभिन्न दृश्यों तथा वार्तालापों का इतना सुन्दर वर्णन तथा सजीव चित्रण इस ग्रन्थ में हुआ है कि आज भी यह काल का अतिक्रमण कर पाठकों के समक्ष उन दृश्यों तथा वार्तालापों को उपस्थित कर देता है। श्री रामकृष्णदेव के अन्तरंग पार्षद् स्वामी रामकृष्णानन्द जी ने श्री 'म' को अपने एक पत्र (दि० १०-८-१९०९) में लिखा था—"दृश्य का वर्णन इतना जीवन्त है कि वह सजीव हो उठा है। आप काल की विनाशकारी शक्ति का भी अतिक्रमण कर सके हैं।" श्री 'म' ने स्वयं एकबार कहा था—"एक-एक दृश्य पर मैंने हजार बार चिन्तन किया है। अत: श्रीरामकृष्णदेव की कृपा से चालीस वर्षों पूर्व की उनकी दिव्य लीला, लिखते समय फिर से मानो मेरी आँखों के सामने खेली गयी और काल का व्यवधान चला गया। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की कहानी उनकी उपस्थिति में ही लिखी गयी है।"[६]

७. लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने नाम के लिए ग्रन्थ में 'म', 'मणिमोहन', 'भक्त' इत्यादि छद्म नामों का प्रयोग कर उसे गुप्त रखा है। इतना ही नहीं, अपने व्यक्तित्व को भी उन्होंने इसमें गुप्त रखा है। स्वामी विवेकानन्द ने देहरादून से लेखक को एक पत्र (दि० २४ दिसम्बर, १८९७) में लिखा था—"किसी महान आचार्य का जीवन-चरित्र लेखक के मनोभावों की छाप पड़े बिना जनता के सामने कभी नहीं आया, पर आप वैसा करके दिखा रहे हैं।

—सुकराती-वार्तालाप में प्लेटो ही प्लेटो की छाप है, किन्तु आप स्वयं अपनी पुस्तिका में अदृश्य ही हैं। उसका नाटकीय पहलू परम सुन्दर है। यहाँ और पश्चिम में दोनों जगह लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं।"[७]

८. विश्व के सभी प्रकार के लोगों के लिए, सभी धर्मों के अनुयायियों, तथा सभी स्तर के लोगों के लिए इसमें हृदयग्राही सामग्री है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सार्वभौमिक है।

९. इस ग्रन्थ में चिरन्तन आध्यात्मिक सत्यों की चर्चा इस प्रकार यह शाश्वत भी है।

उपर्युक्त कारणों को छोड़कर, श्री माँ सारदा देवी का इस ग्रन्थ के लिए आशीर्वाद महत्वपूर्ण है। श्री 'माँ' श्री 'म' को पत्र में लिखा था—"बेटा, श्री रामकृष्ण के निकट तुमने जो बातें सुनी थीं, वे ही बातें सत्य हैं। इस विषय में तुम्हें कोई भय नहीं। किसी समय उन्होंने तुम्हारे निकट इन बातों को रख छोड़ा था। अब आवश्यकतानुसार वे ही उन्हें प्रकट करा रहे हैं। जान रखो कि इन बातों को व्यक्त किये बिना लोगों का चैतन्य जागृत नहीं होगा। तुम्हारे पास उनकी जो बातें संचित थीं वे सभी सत्य हैं। एक दिन तुम्हारे मुँह से उन्हें सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे स्वयं ही ये सब बातें सुना रहे हैं।" २ अप्रैल १९०५ को श्री 'माँ' ने श्री 'म' की पत्नी निकुंज देवी को कहा था—"मैं आशीर्वाद करती हूँ कि इस ग्रन्थ का प्रचार अधिक से अधिक हो ताकि सभी लोग श्री रामकृष्ण देव के बारे में जान सकें।"

सच कहा जाय तो यह जादू है—स्वयं श्री रामकृष्णदेव का। उन्होंने स्वयं ही श्री 'म' को इस कार्य के लिए चुना, अपने उपदेशों को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया, इस बारे में मूल्यवान सुझाव दिये और

---

६. Sri Ramkrishna Kathamrita Centnary Memorial, Volum, P P 144

७. पत्रावली (चतुर्थ संस्करण) रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृष्ठ सं० १०२

समय-समय पर श्री 'म' से पूछते रहे—बताओ, उस दिन मैंने क्या कहा था ? एवं श्री 'म' के कथन में त्रुटि रहने पर, आवश्यकतानुसार सुधार भी किया। इस प्रकार इस ग्रन्थ का संपादन भी मानो श्री रामकृष्णदेव ने स्वयं ही किया है। श्रीरामकृष्णदेव अन्तरंग शिष्य शिवानन्दजी (महापुरुष महाराज) ने भी एक बार श्रीरामकृष्णदेव को बिना कहे, उनके वचनों को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया। किन्तु, एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने इस बात को ताड़कर उन्हें कहा—"तुमलोगों को यह सब करने की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए अलग व्यक्ति निर्दिष्ट है। इस प्रकार श्री रामकृष्णदेव ने स्वयं ग्रन्थकर को चिह्नित कर रखा था।

श्री माँ तथा स्वामी विवेकानन्द के आशीर्वाद से प्रेरणा प्राप्त कर श्री 'म' ने 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' (बंगला) ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया था। ११ मार्च १९०२ को इसका पहला भाग प्रकाशित हुआ। कई लोगों ने इसकी प्रशंसा की तथा कई लोगों ने कटु आलोचना। श्री 'म' निराश हो सोचने लगे, आगे के चार खण्ड प्रकाशित करें या नहीं। उस समय श्रीरामकृष्णदेव ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा (दि० १८ अक्टूबर १९०२)—"इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ।" अब श्रीरामकृष्णदेव से प्रेरणा प्राप्त कर दुगुने उत्साह से इस ग्रन्थ लेखन के कार्य में श्री 'म' जुट गये।

श्री 'म' भी अपने को श्रीरामकृष्णदेव का यन्त्र ही मानते थे। इसी विश्वास के बूते पर वे कहते - "वचनामृत" क्या मैंने लिखा है ? श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपना काम किया है। मेरी बुद्धि तथा इच्छाशक्ति के रूप में उन्होंने ही मुझसे यह लिखवाया है।"[८]

अपने जीवन के अन्तिम चरण में श्री 'म' ने एक प्रशंसक को कहा था—"श्रीरामकृष्ण ही सब कुछ हैं। जब तक विद्युत रहती है, तब तक ट्राम चलती है, बत्ती जलती है, पंखे चलते हैं, इससे विच्छेद होते ही सबकुछ बन्द हो जाता है। अब मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि वे ही मुझे, हाथ पकड़कर चला रहे हैं और मुझे विश्वास है, मेरे जीवन की अन्तिम यात्रा में भी मुझे वे ले चलेंगे।"[९] सचमुच, ४ जून, १९३२ को सुबह ५॥ बजे श्रीरामकृष्णदेव का नाम लेते-लेते उनके पादपद्मों में वे लीन हो गये। उसके पूर्व दिन, फलहारिणी कालीपूजा के दिन, रात को ९ बजे 'कथामृत' (बंगला) के पंचम भाग का अन्तिम प्रूफ उन्होंने देखा था।

जादूगर ने कार्य समाप्त होते ही अपने यन्त्र को संसार से वापस ले लिया किन्तु रख छोड़ा—सदैव के लिए इस संसार में—'वचनामृत' का जादू।

---

८. उद्वोधन नं ६७ क्रम स० ८, पृष्ठ : ४३४
९. उद्बोधन नं ६५ क्रम सं० ६५, पृष्ठ : ३१६

धार्मिक सद्भाव से मानव सभ्यता की उन्नति

—श्री पी० वी० नरसिंह राव

प्रधानमंत्री, भारत

एक मूल तत्व के भिन्न-भिन्न अर्थ

स्वामी विवेकानंद १९वीं शताब्दी में भारत में शुरू हुए उस महान पुनर्जागरण के दौर में पैदा हुए थे जब देश अपने आपको फिर से पहचानने तथा पश्चिमी सभ्यता की उत्कृष्ट बातों को आत्मसात करने का प्रयास कर रहा था। राममोहन राय के बाद नैतिक और आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक सुधार और वैज्ञानिक प्रगति पर भी समान रूप से ध्यान दिया जाने लगा था। धार्मिक विविधता को जिज्ञासा तथा सहनशीलता की भावना से देखा जाता था। राममोहन राय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने विभन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया। रामकृष्ण परमहंस ने अध्ययन की इस परंपरा को और आगे बढ़ाया। उन्होंने दुनिया के अनेक धर्मों पर प्रयोग किए और सभी को एक जैसा अच्छा और सत्य पाया। उनके अनुभव विवेकानंद के विचारों का आधार बने। स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट घोषणा की कि "हम सिर्फ सबके प्रति सहिष्णुता पर ही विश्वास नहीं करते, बल्कि हम सभी धर्मों को सत्य भी मानने हैं।" और आज इसी संत के विचारों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। जो लोग यह कह रहे हैं, वे भारत में पैदा हुए शायद सबसे अधिक असहिष्णु लोग हैं। स्वामी विवेकानंद अपने विचार के समर्थन में 'गीता' का वह प्रसिद्ध श्लोक सुनाया करते थे जिसमें भगवान कृष्ण घोषणा करते हैं :

ये यथा माम् प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम् वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

"चाहे कोई भी व्यक्ति, किसी भी रूप और किसी भी रीति से मेरे पास आए, मैं उन सब तक पहुँचाता हूं। दुनिया के सभी विभिन्न मार्गों से लोग मुझ तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं और ये सब मार्ग अंततः मुझ तक पहुँचते हैं।" पुष्पदत ने कहा है, "जिस तरह विभिन्न धाराएं विभिन्न स्रोतों से निकलकर अंत में समुद्र में मिल जाती हैं, उसी तरह विभिन्न प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर लोग जो अलग-अलग रास्ते ग्रहण करते हैं, चाहे वे टेढ़े-मेढ़े हों या सीधे-सादे सब आप तक पहुंचते हैं।" ये सीधी-सादी बातें हैं। अगर आप इस तरह की बातें संस्कृत में कहें तो ये बहुत ही विद्वतापूर्ण लगती हैं। अगर इन्हें अपनी भाषा में अनुवाद कर दिया जाए तो ये बहुत साधारण बातें बन जाती हैं। किसी छोटे-से गांव की झोंपड़ी में रहने वाला आदमी अपनी बोली में यही बातें कहेगा। बस इतनी ही बात है।

आप लोग यह जानते ही होंगे कि महान दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती ने इसी आधार पर **'प्रस्थानभेद'** का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न विचार-धाराएं एक ही मूल सत्य के अलग-अलग रूप हैं।

इसे पहले महान नैयायिक सुदायन ने कहा था कि विभिन्न मत-मतांतरों के लोग अलग-अलग नामों से एक ही ईश्वर की उपासना करते हैं। बौद्ध दार्शनिकों ने इस समस्या पर विस्तार से विचार किया है और अलग-अलग आस्था वाले लोगों की अलग-अलग शिक्षाओं का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। लेकिन इन सब का सार एक ही है।

इसका विरोध होना स्वाभाविक है क्योंकि इससे सापेक्षिकतावाद का संकेत मिलता है जो एक तरह से अनास्था और यहां तक कि नास्तिकता के समान है। अक्सर प्रश्न किया जाता है कि अगर धार्मिक विश्वास स्पष्ट और अनन्य नहीं है तो क्या यह मनुष्य के मन में पूर्ण आस्था जगा सकता है। एक ऐसी आस्था जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अपना सब कुछ, अपना जीवन तक दांव पर लगा दे। क्या धार्मिक सिद्धांत व्यक्ति के विचारों पर निर्भर नहीं हैं जो स्थान और समय के साथ बदलते रहते हैं? क्या उन्हें सामाजिक रीति-रिवाजों और व्यक्तिगत पसंद-नापसंद के अनुसार बदला जा सकता है? क्या यह सच नहीं है कि सभी धर्मों के पैगम्बर अपने-अपने धार्मिक सिद्धांतों को विशेष महत्व देते हैं? भगवान श्री कृष्ण ने भी अविचल आस्था और अनन्य भक्ति की बात कही है। इस संबंध में आप क्या कहेंगे?

ऐसे संदेह, दोस्तोवस्की के प्रसिद्ध उपन्यास 'दि ब्रदर्स कर्माजोव' में प्रधान धर्म परीक्षक की कहानी की याद दिलाते हैं। प्रधान धर्म परीक्षक किसी परिवर्तन को स्वीकार करने के इतने विरुद्ध था कि उसने यह घोषणा कर दी कि यदि उसके अपने धर्म के संस्थापक भी वापिस आकर कोई नई बात कहकर और जो कुछ उन्होंने पहले कहा था उससे अलग बात कहकर, निष्ठावान लोगों को भ्रम में डालेंगे तो वह उनका भी समर्थन नहीं करेगा। यही वह कट्टरता है जिसे कुछ लोगों द्वारा सब धर्मों में लाया गया है। यही वे लोग हैं जो वास्तव में धर्म की आत्मा को नहीं समझते, ये तो सिर्फ शब्दों के अनुसार चलते हैं। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसे तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। इसमें परिवर्तन की अनिवार्य प्रक्रिया के प्रति भय की भावना समायी हुई है।

मनु से लेकर आज तक के धर्मशास्त्रों को देखिए। आज का धर्मशास्त्र, आज का हिन्दू-कानून आसानी से नहीं पहचाना जा सकता। यदि आप मनु को पढ़ते हैं और अपनी हिन्दू संहिता या आज जो भी अधिनियम हैं, उनको पढ़ते हैं तो आपको पता चलेगा कि उनको पहचान बड़ी मुश्किल है। यह कहना बहुत मुश्किल है कि आज का कानून धर्मशास्त्र से निकला है। यह जो मानव जीवन है, यह गतिशील स्थिति का नाम है, इसे रोक कर नहीं रखा जा सकता। कोई भी व्यक्ति समय की धारा के प्रवाह को नहीं रोक सकता।

पैगम्बरों तथा गुरुओं के उपदेशों से परस्पर विरोधी धार्मिक परंपराओं का जन्म हुआ। यह बात अलग है कि बाद में एक ही धार्मिक परंपरा की व्याख्या अलग-अलग तरीके से की जाने लगी। गुरु ने जो शब्द कहे, जो वाक्य कहे, उन्ही शब्दों, उन्हीं वाक्यों की अलग-अलग व्याख्या की जाने लगी। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे अलग-अलग हैं। व्याख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है परंतु उसका सार तत्व, उसकी 'विषय-वस्तु' वही रहती है।

धर्म से भाषा का विकास

धर्मग्रंथों के मूल शब्दों तथा उनके अर्थ की व्याख्या तथा अनुवाद करने की आवश्यकता है ताकि उन्हें बाद में समझा जा सके। इन व्याख्याओं में व्यापक भिन्नता आ जाती है, जिस कारण, ऐसे संप्रदायों तथा पंथों का जन्म होता है, जो एक-दूसरे की विचारधारा के प्रति असहिष्णु होते हैं। यदि कोई व्यक्ति धर्मग्रंथों में एक सुनिश्चित तथा असंदिग्ध धर्म की खोज करता है, तो वह ऐसा कार्य कर रहा

है जो असंभव है। कुछ आधुनिक नैयायिकों ने तो पूरी व्याख्या करने वाले समानार्थक शब्दों की संभावना पर ही संदेह प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त, इस बात में संदेह है कि क्या धर्मग्रंथों को अक्षरशः समझा जा सकता है या समझा जाना चाहिए। धार्मिक सत्य को आम आदमी की भाषा में किस प्रकार व्यक्त किया जाए, यह एक कठिन समस्या है। आप इसके लिए अलंकारों का प्रयोग करते हैं। कभी-भी इसे आप 'लक्षणा' भी कहते हैं, जब शाब्दिक अर्थ की जरूरत नहीं होती या शाब्दिक अर्थ के कारण कुछ भ्रांति हो रही हो तब आप लक्षणा का प्रयोग करते हैं। सब भाषाओं का विकास धर्म की व्याख्या पर निर्भर रहा है। वास्तव में धर्म ने ही भाषाओं को विकसित किया है। कहा जाता है कि अंग्रेजी साहित्य की सबसे महान रचना बाइबिल है। मैं भी इसे मानता हूं। इस प्रकार आपको धर्म से केवल एक नहीं, बल्कि अनेक चीजें विकसित होती, फलती-फूलती हुई मिलती हैं। यह एक बहुपक्षीय दृष्टिकोण है।

महान बौद्ध गुरु नागार्जुन ने कहा है कि हम बच्चे तथा प्रबुद्ध शोधकर्ता को एक समान पाठ नहीं पढ़ा सकते। अगर बच्चा यह कहे कि वर्णाक्षर समूची शिक्षा का आदि तथा अन्त है तो उसकी इस बात को गंभीरता से नहीं लिया जाएगा। यहां तक कि एक प्रौढ़ व्यक्ति भी जब किसी गूढ़ तथा जटिल बात को सुनता है तो हो सकता है पहली बार में वह उसे पूरी तरह से न समझ सके। यह हो सकता है। गीता में कहा गया है, "आध्यामिक ज्ञान वह है जो व्यक्ति समय के साथ-साथ अपने ही अंदर प्राप्त करता है।" 'खलेनात्मनि विन्दति।' अर्थ बिल्कुल साफ है। अतः धर्म को अपरिवर्तनीय और निश्चित सीमा में बंधी चीज नहीं माना जा सकता बल्कि वह तो एक ऐसा दिशा-निर्देश देता है जिसके अनुसार प्रयत्न व खोज कर हमें आगे बढ़ना है।

धर्म बुराई का प्रचार नहीं करता

विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को एक-दूसरे की निन्दा करना बंद कर देना चाहिए और इसके बजाए उन्हें अपने से भिन्न विचारों को समझने का प्रयास करना चाहिए। यह सभ्य जीवन, शांति तथा प्रगति के लिए केवल एक व्यावहारिक आवश्यकता ही नहीं है बल्कि यह एकमात्र दृष्टिकोण भी है, जो धर्म की गतिशील, गंभीर और उदार परिभाषा के अनुकूल है। कोई और दृष्टिकोण ऐसा नहीं हो सकता। विवेकानंद के ये शब्द वास्तव में सर्वत्र लिखने योग्य हैं कि सांप्रदायिकता और कट्टरता से उत्पन्न धर्मान्धता दीर्घकाल से इस सुन्दर पृथ्वी को जकड़े हुए है। इसने पृथ्वी को हिंसा से भर दिया है, इसे मनुष्य के रक्त से प्रायः रंजित किया है, सभ्यता को नष्ट किया है और अनेक राष्ट्रों को निराशा में डुबोया है। इस बात को विवेकानन्द ने सौ या अस्सी साल पहले लिखा होगा। परन्तु आज की स्थिति का भी इससे अधिक सजीव चित्रण अन्यत्र नहीं मिल सकता।

ईश्वर की खोज में निकले मनुष्य का पतन अंत में पाप में क्यों होता है, इस अजीबो-गरीब बात को समझाने के लिए विवेकानन्द कुएं के मेंढक की कहानी सुनाते थे। यह कहानी बड़ी मार्मिक है और उन्हीं के शब्दों में सुनने लायक है :

"एक कुएं में एक मेंढक रहता था। वह काफी समय से वहां रह रहा था। एक दिन एक और मेंढक, जो समुद्र में रहता था, वहाँ आया और उस कुएं में गिर गया। "तुम कहां से आये हो ?" पहले मेंढक ने पूछा। "मैं समुद्र से आया हूं।" दूसरा मेंढक बोला। "समुद्र ! वह कितना बड़ा है ! क्या वह मेरे इस कुएं जितना बड़ा है ?" और उसने कुएं के एक सिरे से दूसरे तक छलांग लगाई।... "कैसी बेवकूफी की बात करते हो तुम ? समुद्र की तुलना

कुएं से की आ सकती है?" समुद्र का मेंढक बोला। इस पर कुएं के मेंढक ने कहा "मेरे कुएं से बड़ी चीज कोई नहीं हो सकती। इससे बड़ी और कोई चीज है ही नहीं। यह झूठा है, इसे बाहर निकाल दो।" संकीर्ण मस्तिष्क वाला व्यवित जो किसी विषय पर व्यापक रूप में सोचने में असमर्थ होता है, किस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, यह इसका उदाहरण है। यही तो मुश्किल है। हम सब अपने छोटे-छोटे कुओं में रह रहे हैं और उनको समूचा ब्रह्मांड समझ रहे हैं। विभिन्न धर्मों के बीच पर्याप्त संवाद न होने से पैदा हुई वैचारिक संकीर्णता धार्मिक संघर्ष का कारण है। आइए, एक बार फिर उसी बात पर, इस धर्म-संसद के महत्व पर बिचार करें।

पथ के लिए अन्तर्दृष्टि

धार्मिक विश्वास का एक पक्ष वे बातें हैं जिनका संबंध अलौकिक तथा अति-मानवोय यथार्थ से है। इस यथार्थ को किसो भी मानवोय भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि सभी भाषाओं में एक तार्किक संरचना होती है जो भौतिक जगत के अनुकूल होती है। मनुष्य को इस निराशापूर्ण स्थिति से जो चीज बचाती है, वह है पैगम्बरों तथा संतों के शब्दों की शक्ति। उनकी वाणी मनुष्य के अन्दर उस परमात्मा के प्रति आंतरिक आस्था उत्पन्न करती है, जिसको प्रकृति को तो वह समझ नहीं सकता किन्तु अगर ईश्वर की कृपा हो जाए तो उसके साथ वह आंतरिक मौन में संलाप कर सकता है। भगवान् श्री कृष्ण ने भी कहा है, "तुम मुझे अपनी स्वयं की दृष्टि से नहीं देख सकते। परन्तु मेरा दैवी स्वरूप देख सको, इसके लिए मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करूंगा। अतएव यह अनुभूति का, अनुभूति के विभिन्न स्तरों का प्रश्न है और आपको कुछ चीजों को अनुभव करने के लिए, उन्हें देखने के लिए कुछ स्तर तक उठना पड़ेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमें विभिन्न स्तर की अनुभूति वाले व्यक्तियों के लिए अलग-अलग तरीके निर्धारित करने की बड़ी भारी सुविधा प्राप्त है। यही सबसे बड़ी बात है, जिसकी कल्पना की जा सकती है। यह बात सच है कि एक तरीका जो एक व्यक्ति के लिए पूरी तरह अनुकूल है, दूसरे व्यक्ति को माफिक न आये। परन्तु उस व्यक्ति के लिए एक अलग तरीका मौजूद है। इस प्रकार हमारे पास हजारों सालों से विकसित हुई परंपरा है। लेकिन आज हम अज्ञानतावश तात्कालिक लाभ उठाने में इतने व्यस्त हैं कि लगता है हमने अपनी सभी महान परंपराओं को तिलांजलि दे दो है।

चूंकि ईश्वर का साक्षात्कार केवल उसको कृपा से ही प्राप्त हो सकता है इसलिए धर्मग्रंथों को पढ़ना और उनकी बौद्धिक व्याख्या करना ही काफी नहीं है। धार्मिक आस्था के रूप में भगवान के प्रति आस्था होना चाहिए। धर्मग्रंथों का मूल स्रोत भी ईश्वर ही है जो उसी परम सत्य को उजागर करते हैं। भले ही उसका वर्णन उस प्रकार न कर सके जिस प्रकार से किसी सांसारिक वस्तु का किया जाता है। यदि धार्मिक आस्था अंधविश्वास और रूढ़ियों का रूप लेती जा रही हो तो उसमें इतनी विनम्रता तो होनी ही चाहिए कि वह अपनी सीमाओं को स्वीकार करे तथा अन्य धर्मों के अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों के प्रति भी उसे सहनशील होना चाहिए। यही तो वह कीमत है जो चुकानी पड़ती है। यदि आप कट्टर हैं तो दूसरा व्यक्ति भी कट्टर हो सकता है। आपको एक-दूसरे के साथ रहना पड़ेगा। यदि आप कट्टर नहीं हैं तो अन्य व्यक्ति को भी किसी प्रकार की कोई कट्टरता करने की आवश्यकता नहीं। अगर आप एक-दूसरे को समझ सकते हैं तो हर चीज बदली हुई होगी।

दृष्टिकोण में नम्रता

अगर आस्था का सच्चा काम मनुष्य के समक्ष इस सच्चाई को उजागर करना है कि यथार्थ दुनिया से भी ऊँचा है तो धर्म के व्यावहारिक पक्ष का उद्देश्य मनुष्य में नैतिक तथा आध्यात्मिक सद्गुणों का विकास करने में उसकी सहायता करना है। और यदि आप धर्म का केवल एक लाभ, एक फायदा वताना चाहें तो वह लाभ यही है कि धर्म आपको विनम्र तथा विनीत वनाता है। वह आपको स्थान दिखाता है, आपको आपके स्थान की अनुभूति कराता है। यह आपको उस अहंकार से मुक्त कराता है जिस अहंकार के कारण प्रत्येक प्रगति, हर प्रकार की मानसिक या आध्यात्मिक प्रगति रुक जाती है। यदि अहंकार समाप्त हो जाए तो धार्मिक समझ-बूझ एवं मेल-मिलाप के समूचे ताने-वाने में वहुत ही कम समस्या रह जाएगी। सभी धर्म आत्म-संयम तथा परोपकार जैसे सद्गुणों पर जोर देते हैं। अशोक महान ने घोषणा की थी कि सभी धर्म, अपने आपसी मतभेदों के वावजूद, उन सद्गुणों को अपनाने पर जोर देते हैं, जो मानवता का सार माने जाते हैं। और ये सार तत्व हैं आत्म-संयम और हृदय की पवित्रता।

धर्म का सामाजिक आयाम

धर्म का तीसरा पहलू सामाजिक संगठन से संबंधित है, यह पहलू सबसे जटिल समस्याएं उपस्थित करता है। धार्मिक समुदायों ने कई वार राज्य सत्ता के साथ अपना नाता जोड़ने की कोशिश की और इससे धार्मिक कट्टरता और राजनीतिक हिंसा के वीच गठजोड़ कायम हुआ। ऐसा वहां है जहां राज्य का एक राज्य-धर्म है, वह धर्म कोई भी हो। क्योंकि यह केवल धर्म ही नहीं होता. वल्कि उसके पास तलवार, टैंक, बंदूक सब कुछ होता है जिससे वह धर्म को बढ़ावा देता है: यह एक ऐसा गठजोड़ है जो समाज के लिए बहुत ही खतरनाक होता है क्योंकि यह एक असमान लड़ाई होती है। अव्वल तो समाज में किसी प्रकार की लड़ाई होनी ही नहीं चाहिए। और अगर लड़ाई करनी ही पड़े तो यह गैर-वरावर ताकत वालों की लड़ाई नहीं हो सकती। अगर राज्य सत्ता को धर्म की मदद लेनी पड़े और धर्म का उपयोग राज्य सत्ता द्वारा किया जाए तो समाज में संतुलन कैसे बना रह सकता है? मैं धर्म की बात नहीं कर रहा हूं। मैं व्यावहारिकता की बात कर रहा हूं कि आप कैसे रहते हैं? आप कैसे जीवित रहते हैं?

राज्य एक ऐसा तंत्र है जो ताकत के इस्तेमाल पर आधारित है। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति जानता है और यदि राज्य को यह ताकत धर्म को मिल जाए या फिर राज्य सत्ता को धर्म की सहायता मिल जाए तव वास्तव में कौन उसका प्रतिरोध कर सकता है? यही वह असली समस्या है जिसका सामना आज भारत तथा भारतीय समाज कर रहा है। यदि हम इस वात को समय रहते महसूस नहीं करेंगे तो मेरा विचार है कि हमें अपनी इस लापरवाही के लिए एक दिन पछताना पड़ेगा। तव हमें उसी स्थिति पर संतोष करना पड़ेगा। अशोक, हर्ष तथा अकवर जैसे महान शासकों ने सब धर्मों को एक समान संरक्षण प्रदान किया।

भारतीय इतिहास क्या है? मैं एक शब्द कहूं तो भारतीय इतिहास, जो जनता का इतिहास है, राजाओं का नहीं, मेलजोल से रहने का प्रयास का नाम है। हमारा इतिहास समस्त विभिन्नताओं के वावजूद सह-अस्तित्व का नाम है। अगर मेलजोल और सह-अस्तित्व की यह भावना न होती तो इस विविधता ने हमारे वहुत पहले ही टुकड़े-टुकड़े कर दिये होते। परंतु ऐसा इसीलिए नहीं हुआ क्योंकि हमने, हमारे समाज ने, पुरुषों, स्त्रियों, वच्चों, अमीर, गरीब, सभी ने, भारत के प्रत्येक आदमी ने

मेलजोल से रहने का भरपूर प्रयास किया है। आप भारत के प्रत्येक गांव में हर हिन्दू और मुसलमान के बीच पुलिस का आदमी तो नहीं रख सकते। यह एक नामुमकिन बात है। और अगर आपने पुलिस का आदमी रख भी दिया तो फिर सवाल उठेगा कि वह हिन्दू है या मुसलमान है। इस देश का अस्तित्व बना हुआ है, इसका मुख्य कारण और मैं तो कहूंगा इसका एकमात्र कारण लोगों की समझदारी ही है। लड़ाई-झगड़े और छुट-पुट खून-खराबे के बावजूद अगर भारत का अस्तित्व बना हुआ है तो सिर्फ लोगों की समझदारी और इसे बनाये रखने के उनके जोरदार प्रयासों की वजह से ही बना हुआ है। सदियों से लोगों ने यह महान प्रयास किया और वे मेलजोल के साथ रहने में सफल हुए। यह आपसी मेलजोल पुलिस या सरकार या किसी व्यक्ति के कारण नहीं हुआ बल्कि यह सिर्फ लोगों के अपने प्रयास के कारण हो सका। यदि उस प्रयास में कोई भी कमी रह जाती तो यह देश निश्चय ही टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाता और आज जो भारत हम देख रहे हैं वह न होता। हमें इस बात को समझ लेना चाहिए।

आचरण व स्मरण करने योग्य बातें

विवेकानन्द ने इस तरह के विचार एक शताब्दी पहले ही प्रकट कर दिये थे। धर्म-संसद में उनका अंतिम भाषण आज के संदर्भ में बड़ा प्रासंगिक है। मैं उसे उद्धृत करता हूं, "धार्मिक एकता के एक समान आधार के संबंध में बहुत सी बातें कही गई हैं। मैं इस संबंध में अभी अपना निजी मत और सिद्धांत प्रतिपादित नहीं कर रहा हूं। परन्तु अगर कोई यहां यह आस लगाए बैठा है कि एक धर्म की जीत और दूसरे धर्म के विनाश से दुनिया में एकता आएगी तो उसके संबंध में मुझे कहना है कि भाइयो आपकी यह आशा असंभव है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं बनना है। परन्तु प्रत्येक धर्मावलंबी को अपने धर्म की विशेषताएं सुरक्षित रखते हुए दूसरों की भावना को आत्मसात कर लेना चाहिए और फिर विकास की अपनी निजी प्रकृति के अनुसार फलते-फूलते रहना चाहिए।"

"यदि धर्म-संसद ने विश्व को कोई मार्ग दिखाया है तो वह यह है कि इसने संसार के सामने यह सिद्ध कर दिया है कि पवित्रता, शुचिता और दया संसार में किसी एक धर्म की बपौती नहीं है। हरेक धर्म में महान चरित्र वाले पुरुष और महिलाएं हुई हैं।" इसीलिए विवेकानन्द ने कहा था कि अब प्रत्येक धर्म को चाहिए कि वह अपनी-अपनी ध्वजा पर ये नारे लिख दे : 'मदद करो, लड़ो नहीं', 'जोड़ो, तोड़ो नहीं', शांति और सद्भाव हो, मतभेद नहीं'।

अगर सभी धर्म आज इन आदर्शों को अपना लें तो न भारत में और नहीं विश्व में मानव सभ्यता के अस्तित्व और विकास के लिए कोई समस्या रहेगी।

भविष्य का पूर्वालोकन

—स्वामी योगात्मानन्द

[प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित मराठी मासिक पत्रिका जीवन विकास से साभार गृहीत है। स्वामी योगात्मानन्द इस पत्रिका के सम्पादक हैं। उक्त मराठी लेख की अनुवादिका हैं— श्रीमती ज्योत्स्ना किरवई, नागपुर। — सं०]

सन् १९४१, दूसरा महायुद्ध अपने पूरे यौवन पर था। ब्रिटेन तथा रूस, जर्मनी और उसके सहयोगी इटली के विरुद्ध त्रिखंडव्यापी युद्ध में पूर्णरूपेण व्यस्त थे। ब्रिटेन तथा रूस को अमेरिका भले ही विविध प्रकार से सहायता कर रहा था पर वह स्वयं अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रत्यक्ष युद्ध में भाग नहीं ले रहा था। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट को युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से पूरी शक्ति के साथ अविलम्ब सहभागी होने के लिए बार-बार अनुरोध कर रहे थे, क्योंकि वे जानते थे कि जब तक अमेरिका प्रत्यक्ष युद्ध में नहीं उतरेगा तब तक भले ही वह कितनी भी मदद करे, किन्तु उनके लिए इस युद्ध में विजयी होना, उस भयंकर प्रवल शत्रु को पराभूत करना असम्भव ही है। यदि युद्ध में विजय हासिल न हो सकी तो अमेरिका द्वारा की गई मदद का फलतः कुछ भी उपयोग नहीं होगा। वह सहायता यूँही व्यर्थ चली जायेगी, इस बात को रुजवेल्ट इतनी तीव्रता से महसूस नहीं कर पा रहे थे। पर चर्चिल की भविष्य-वेधी दृष्टि ने तो इस युद्ध के भावी परिणाम को पहले से ही देख लिया था। विश्व के राजनैतिक रंगमंच पर उच्च स्थान पर आसीन चर्चिल इस तरह की कई घटनाओं के साक्षी थे जिनमें उन्होंने प्रारम्भ में निरुपद्रवी लगने वाली परिस्थितियों को कालांतर में भस्मासुर के समान विध्वंसक रूप धारण करते देखा था। और इस युद्ध में भी कुछ घटनाओं के प्रारम्भिक निरुपद्रवी बीजरूप में ही भस्मासुर का भयंकर विशाल वृक्ष किस तरह अवस्थित है, इस बात को चर्चिल के भविष्यवेधी मानस ने भलीभांति समझ लिया था। और इसीलिये वे इस युद्ध की विभिन्न घटनाओं को तथा उनके द्वारा उत्पन्न भयानक परिणामों से रुजवेल्ट को परिचित कराने का प्रयत्न बार-बार कर रहे थे ताकि रुजवेल्ट परिस्थिति की गम्भीरता को समझ सकें।

और एक दिन अचानक एक ऐसी घटना घटी जिसने चर्चिल की इच्छपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ६ दिसम्बर, १९४१ का दिन, युद्धविषयक कार्यों में अपने सहयोगियों के साथ व्यस्त चर्चिल ने रेडियो पर एक खबर सुनी। और वह थी --"जापान ने अमेरिका के पर्ल हार्बर बंदरगाह पर अचानक हमला कर अमेरिका के कुछ युद्धपोतों को क्षतिग्रस्त कर जलसमाधि दे दी।"

इस समाचार को सुनकर सभी आश्चर्य से अवाक्-से रह गये। जापान के साथ चीन के कुछ मतभेद पहले से ही शुरू थे। इन सब वैमनस्यों तथा अन्य कुछ व्यापारिक करारों के सन्दर्भ में जापान ने

अमेरिका के समक्ष कुछ माँगें रखी थीं। ये सब सौदेबाजी अभी शुरू ही थी और ठीक इसी समय जापान ने बिल्कुल अन्तिम निर्णय लेकर अमेरिका जैसे बलशाली राष्ट्र के ऊपर चढ़ाई कर अकारण ही युद्ध की स्थिति निर्मित कर दी थी। चर्चिल के साथ अन्य कई राष्ट्रनेताओं को जापान के इस आत्मघाती निर्णय की कतई उम्मीद नहीं थी। और इसीलिए इस समाचार ने सभी को अचंभित कर दिया था।

पर चर्चिल और उसके सहकारियों में से सिर्फ चर्चिल को इस समाचार ने अत्यन्त आनन्दित कर दिया था। उसने लिखा था कि "इस समाचार के बारे में निश्चित तथा विस्तृत विवरण अभी तक मुझ तक नहीं पहुँचा है पर फिर भी मैं कुछ भावी घटनाओं को अपनी आँखों के समक्ष देख पा रहा हूँ। अब अमेरिका अपनी पूरी शक्ति के साथ युद्ध में सहभागी हो ही गया है। अत: डडर्क में पराभूत हो पीछे हटना, फ्रांस पर शत्रु का कब्जा और भी अन्य कई भयंकर अपयशों के बावजूद इस युद्ध में हम निश्चित रूप से विजयी होंगे। क्योंकि अब अमेरिका को अपनी पूरी शक्ति के साथ युद्ध में उतरना ही होगा। और फिर हमारी सेना का बल तथा साधन-बल दुगुना हो जायेगा।" पर्ल हार्बर पर जापान द्वारा किये गये हमले के कारण इस युद्ध से उद्भावित होने वाले भविष्य को चर्चिल बहुत स्पष्ट रूप से देख रहे थे। और इसीलिए भले ही इस घटना ने अनेक लोगों को चिंतित तथा क्षुब्ध कर रखा था पर चर्चिल का मन तो नयी आशा और नये उत्साह से भर गया था।

□ □ □

किसी भी घटना या किसी भी बात के ऊपरी या तत्कालिक रूप से मोहित न होकर उसके भावी परिणामों को जानने का प्रयास किया जाय तो मनुष्य को बहुत अधिक लाभ होता है। बहुत सालों पहले आंध्रप्रदेश में भीषण आँधी तथा तूफान आये थे और उससे बहुत अधिक जन-धन की हानि हुई थी। उसके कई साल बाद फिर उससे भी अधिक भयंकर तूफान आया पर इस बार पिछली बार की तुलना में बहुत कम नुकसान हुआ। क्योंकि मौसम विभाग ने इस तूफान के आगमन की पूर्व सूचना दे रखी थी। अत: जनता ने सब प्रकार की सावधानियाँ बरत कर अधिक नुकसान नहीं होने दिया। शेयर बाजार तथा अन्य कई धन्धों में यदि आपको सफलता हासिल करनी है तो वर्तमान घटनाओं से उनके भावी परिणामों को अनुमानिल करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। इसी क्षमता के ऊपर ही इन धंधों की सफलता निर्भर रहती है।

आध्यात्म साधना की सफलता भी आंशिक रूप से इसी क्षमता पर अवलम्बित रहती है। मनुष्य भोगविषयक वस्तुओं के ऊपरी आकर्षण से मोहित होकर ही उनके बंधन में बँधता है। यदि धन सम्पत्ति की क्षणभंगुरता और धनलालसा के कारण आनेवाले भयंकर बन्धनों को वह पहले से ही जान ले तो फिर शायद ही कोई इसके लालच में पड़े। सुन्दर और सुदृढ़ दिखने वाला यह शरीर थोड़ी-सी कालावधि के पश्चात् जराग्रस्त, रोगग्रस्त तथा कुरूप होनेवाला है यह भविष्य यदि किसी ने पहले से ही जान लिया तो फिर कौन इस शरीर पर आसक्त होकर उसके पीछे दौड़धूप करेगा ?

मन में उठनेवाली इच्छा की प्रत्येक तरंग आने वाले समय में क्या गुल खिलायेगी, उसका क्या परिणाम होगा इस सम्बन्ध में यदि पहले से ही विचार कर लिया जाये, इसे परख लिया जाय और फिर

उस इच्छा को पूरा करना इष्ट है या अनिष्ट यह निर्णय लिया जाय तो काम बहुत सरल हो जाता है। क्योंकि मन में उठने वाली छोटी-सी तरंग को तो बलपूर्वक नष्ट किया जा सकता है पर अपने बाहरी मोहक रूप से आसक्त होकर यदि उसे बढ़ने दिया जाय तो वृद्धिगत होने के पश्चात् उसे नष्ट करना बहुत ही अधिक कष्टसाध्य हो जाता है।

देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्र में इस ओर गम्भीर संकेत करते हुए अपने भक्तों को उपदेश दिया है—

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः। काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश-सर्वनाशकारणत्वात्। तरंगायिता अपीमे सङ्गात् समुद्रायन्ति। (नारद् भक्ति सूत्रः ६।४३-४५)

दुःसंग अर्थात् अपने मन की वासना-तरंगों को उत्तेत्रित करने वाला संग-साथ साधकों को सदैव टालना चाहिए। क्योंकि इसीसे काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश जैसी सर्वनाश की ओर ले जाने वाली शृंखला तैयार होती है। वासना की एक छोटी-सी तरंग को यदि समय रहते नष्ट नहीं किया जाय तो दुःसंग के कारण ये छोटी-छोटी वासनाएँ समुद्र के समान प्रचंड स्वरूप धारण कर लेती हैं।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के स्वभाव का वर्णन करते समय उनके अन्तरंग लीलासहचर तथा जीवन चरित-लेखक स्वामी सारदानन्द का कथन है कि किसी भी विषय में ग्राह्य या अग्राह्य निश्चित करने के पहले उनका मन उसके अन्तिम परिणाम की ओर चला जाता था। वे लिखते हैं—"ठाकुर का मन हमेशा किसी भी बात की योग्यता, अयोग्यता की परख कर लेता था। किसी व्यक्तिविशेष या वस्तुविशेष से आने वाला सम्बन्ध उन्हें अन्त में कहाँ ले जायेगा इसका साधक-बाधक विचार कर तथा इस बाबत दूसरों की क्या अवस्था हुई थी इसका अवलोकन कर ही वे उस दिशा में किसी भी कार्य को करने के पहले एक निश्चित सिद्धान्त या मत बना लेते थे और तदुपरांत ही उस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय लेते थे। स्वभावतः ये सारी बातें अपना स्वयं का उद्दिष्ट तथा स्वयं के अन्तिम स्वरूप को ठाकुर से छिपाकर अपने लुभावने मोहक छद्मवेश द्वारा उन्हें मोहित कर, थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो, उन्हें भ्रमित कर पातीं, यह संभव ही नहीं था।" सभी वस्तुओं के अन्तर्मन को परखने वाली और उनके दोष का अवलोकन करने वाली बुद्धि ही मानव को ईश्वर दर्शन के मार्ग पर अतिशीघ्र तेजो से ले जाती है। और इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में श्रद्धा भक्ति सम्पन्न मानव को सर्वदा संसार के 'जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुःख' इन दोषों का आकलन कर वैराग्यवन्त होने का उपदेश दिया है। ठाकुर के स्वभाव में यह दृष्टि बचपन से ही विकसित थी। उदाहरणार्थ पढ़ना लिखना सीखकर 'तर्कालंकार', 'विद्यावागीश' जैसी पदवियाँ हासिल कर लौकिक यश प्राप्त करना—ये बातें उनकी दृष्टि में नहीं आयीं, बल्कि उन्हें दिखा—बड़े-बड़े बुद्धिमानों का, 'तर्कवागीश', 'विद्याभूषण' आदि उपाधिप्राप्त लोगों का न्यायवेदांत की लम्बी लम्बी लच्छेदार बातों को अमीरों के सामने बोलकर उनको चापलूसी करना तथा उन्होंने जो भी दिया उसपर सन्तुष्ट रहना या पेट भरने के लिए किसी की चाकरी करना आदि।

विवाह कर संसार के भोग सुखों, मौजमस्ती की ओर आकृष्ट होने की जगह उन्हें लगा कि लोग दो दिन के सुख के लिए हमेशा के बन्धन में अपने आप को बाँध लेते हैं। अपनी निजी जरूरतों को बढ़ाकर फिर धन की चिंता में भागदौड़ करते फिरते हैं। वैसे यह दो दिनों का सुख भी अनिश्चित ही रहता है।

पैसों से इस संसार में सब कुछ किया या करवाया जा सकता है यह सोचकर कमर कसकर जी-तोड़ मेहनत कर धन कमाने की इच्छा उनके मन में जागृत नहीं हुई इसके विपरीत उन्होंने अनुभव किया कि पैसों से सिर्फ दाल-भात, कपड़े-लत्ते, ईंट, मिट्टी, लकड़ी सिर्फ यही सब कुछ मिल सकता है, ईश्वर-लाभ कभी भी नहीं हो सकता।

दुनिया में गरीब-दु:खी लोगों पर दया कर, दूसरों के दु:खों को दूर कर 'दाता' 'परोपकारी' 'दयालु' के रूप में प्रसिद्ध होने की जगह उन्हें दिखा कि जिंदगी भर मेहनत कर अधिक-से-अधिक दो-चार नि:शुल्क पाठशालाएँ, धर्मार्थ दवाखानें और नहीं तो दो-चार धर्मशालाएँ बनवा जरूर सकते हैं पर उसके बाद तो मृत्यु अटल ही है। इतना सब करने के बावजूद दुनियाँ की जरूरतें, लोगों की गरीबी वैसी की वैसी ही रह जाती हैं। ठाकुर का अन्य सभी विचारों के सम्बन्ध में यही दृष्टिकोण था।

●

प्रेरक प्रसंग

भगवान बुद्ध को अपना आराध्य देव और परमपूज्य माननेवाले बौद्ध धर्मावलम्बी देश जापान के एक बाल विद्यालय में एक बार स्वामी रामतीर्थ ने एक कक्षा के बच्चों से प्रश्न किया, "मैं जानता हूँ तुम्हारा देश भारत में जन्मे भगवान बुद्ध को परमपूज्य मानता है। किन्तु वह तो जापानी नहीं थे, विदेशी थे। यदि कल को भगवान बुद्ध पुन: जन्म लेकर और तुम्हारे देश के शत्रुओं के सेनापति बनकर जापान पर आक्रमण कर दें तो बताओ ऐसे धर्म-संकट में तुम क्या करोगे?"

इस अप्रत्याशित उत्तेजक प्रश्न पर कक्षा के बच्चों की भृकुटियाँ तन गयीं। मारे क्रोध के बच्चों ने होंठ काट लिए। तब उनमें से सबसे छोटे बच्चे ने क्रोध से काँपते हुए उत्तर दिया, "यदि भगवान बुद्ध ने हमारी परमप्रिय मातृभूमि पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया तो मैं उनसे युद्ध करूँगा।" सभी बच्चे एक साथ चीख उठे, "हमारे देश पर आक्रमण करनेवाला कोई भी हो, कितना भी पूज्य हो, हम उससे युद्ध करेंगे।"

(संस्मरण—स्वामी रामतीर्थ)

भजस्व माम्

प्रवचन : स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती

संकलन कर्त्री : श्रीमती कृष्णादेवी

श्रीमद्‌भगवतगीता के नवें अध्याय के अंत में भगवान के सौशील्य गुण का वर्णन करते हुए यह कहा गया कि यदि थोड़े साधन वाले, थोड़े कर्म वाले, थोड़े पुण्यवाले जन्म-जन्म के पाप करने वाले भी कोई भगवान की शरण में आ जाये, तो उनका कल्याण हो जाता है। तो फिर जो बड़े-बड़े हैं उनके बारे में तो कहना ही क्या।

किं पुनर्ब्राह्मणा: पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।। गीता ९-३३

तो फिर पुण्यात्मा ब्राह्मण, भक्त तथा राजर्षियों की तो बात ही क्या। इस अनित्य असुखकर लोक को प्राप्त करके मेरा भजन कर।

इसको कैमुतिक न्याय बोलते हैं। जब छोटे-छोटे लोगों की, तुच्छ दृष्टि वालों की यह स्थिति है कि उन्हें भगवत प्राप्ति हो जाती है, तो जिनकी दृष्टि उदार है, जो सदाचार-सम्पन्न हैं जो पूर्व-पूर्व के पुण्यात्मा होने से उत्तम जाति में पैदा हुए हैं, उनके बारे में तो कहना ही क्या। मनुष्य शरीर मिल गया है, इसको प्राप्त करके भगवान् का भजन कर लो, नहीं तो हाथ कुछ नहीं लगेगा। ऐसी जगह तुम पहुँच चुके हो जहाँ से हाथ से परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो। पकड़ लो ईश्वर का हाथ। अरे! पकड़ लो नहीं तो गिरोगे तो कोई ठिकाना ही नहीं रहेगा।

इमम् का अर्थ है तुच्छम्। अत्यन्त तुच्छ है यह सृष्टि। 'इदन्तया दृश्यामानम्, इदम् इदम् इदम् इति परिवर्तमानम्।' यह, यह, यह बदलता जा रहा है। बदल गयो दुनिया। न वे काले बाल रहे, न वे मजबूत दांत रहे, न वह चिकनी चमड़ी रहो। अनित्य। न वे भाई-बहन रहे। यह बदल रहा है ही, यह बदल रहा है। बदलती दुनिया में सहारा किसका है? ये जो तुम्हें सृष्टि में दिखाई पड़ता है, उससे यदि तुम सुख चाहते हो, तो तुम्हारी चाह मृगतृष्णा है। उसमें चाहे गुरूबाबा हों, चाहे स्वामीबाबा

हों। वे हमको सुखी कर देंगे, यह आशा बिल्कुल मृगतृष्णा है। दुनिया में कोई किसी को सुख नहीं देता। न किसी को किसी से सुख मिल सकता है।

'इमम् अनित्यम् असुखं लोक प्राप्य:—इम माने तुच्छम् और अनित्यम्। अनित्यम् का अर्थ है यह नहीं रहेगा। हमारे एक मित्र ने अपने घर में बड़े-बड़े रंगीन अक्षरों में लिखा हुआ फ्रेम कराके जगह-जगह लगाये हुए थे—यह भी न रहेगा। आज गरीबी है तो यह न रहेगी। आज धनाढ्यता है तो यह न रहेगी। यह भी नहीं रहेगा। अनित्यम्।

और असुखम्। सुखविरोधी दुखम्। संसार में सुख कहीं नहीं। 'सुष्ठु खं यस्मात्।' खं माने आकाश। सु माने सुष्ठु। सुख किसे कहते है? जब हमारा हृदय निर्मल हो जाय। न आकाश में आँधी चल रही हो, न बादल मंडरा रहे हों, न लू चल रही हो, तब हम कहेंगे कि आज का मौसम बढ़िया है। तो जब दिल का मौसम बढ़िया बन जाता है तब उसको सुख बोलते हैं संस्कृत में। 'सुष्ठु खं हृदयगगनं यस्मात् तत्सुखम्।' अपना हृदयाकाश निर्मल हो, उसमें कोई दुविधा न हो, उसमें संकल्प-विकल्प के बादल न मँडरा रहे हों, उसमें चञ्चलता की वायु न चल रही हो, उसमें मलिन विचारं की गन्दगी न मिली हो, उसको सुख बोलेंगे।

भाई, इस दुनिया की तो हालत यह है। 'अनित्यम् असुखं लोकम्।' दु:ख-ही-दु:ख भरा हुआ है। सुख वह होता है जिसका प्रयोजन दूसरे के लिए नहीं होता है। जैसे कोई पूछे—

'आप बाजार में क्यों जाते हैं?'
'सेठजी से मिलना है।' आप कहेंगे।
'सेठजी से क्यों मिलना है?
'उनके पास कुछ रुपये हैं। लें आवेंगे।'
'रुपये क्यों लाने हैं?
'आटा-दाल खरीरदना है।'
'वह क्यों खरीदता है।'
'भोजन करना है।'
'भोजन करने से क्या होता?'
'उससे स्वास्थ्थ ठीक रहना।'
स्वास्थ्य ठीक रहने से क्या होगा?'
'हम सुखी रहेंगे।'
'आप सुख क्यों चाहते हैं?'

'हम सुखी रहना चाहते हैं।'

'पर आप सुखी रहना क्यों चाहते हैं ?'

इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं, क्योंकि सुख का प्रयोजन दूसरे के लिए नहीं होता है। सुख परम पुरुषार्थ है।

अन्येच्छानधीन्-इच्छाविषयत्व सुखम् नैयायिकों न सुख की परिभाषा की 'अन्येच्छानधीन् और इच्छाविषयत्वम्।'

जिसको हम चाहते तो हैं, परन्तु दूसरे के लिए नहीं चाहते। सुख के लिए ही सुख चाहते हैं। ऐसा सुख कहां है ? ऐसे सुख के सुख हैं श्रीराम। आनन्द-के-आनन्द हैं। भगवान् ही परमानन्द हैं।

'अनित्यमसुखं लोकम् इमं प्राप्य' यह तुम्हें मिला लेकिन आज है कल नहीं रहगा। यह है लेकिन तुमको दुःख दे रहा है। यह है लेकिन बहुत तुच्छ है जिसके पास करोड़ों, अरबों रुपये हैं उसको किस बात का सुख है ? अभिमान का सुख है कि हमारे पास इतने रुपये हैं। हमसे बढ़िया नींद उनको आती है ? राम-राम, सीता-राम कहो। गोली न खायें तो उनको नींद न आये। नहीं आती है ही। क्या सुख है ? अच्छा, उनको स्त्री से जो सुख मिलता है, वह ज्यादा है ? उनको खाने का सुख ज्यादा है ? और डॉक्टर लोग आकर कहेंगे-रूखी रोटी खाओ, इतना टहलो, शरीर में चरबी न बढ़ने पाये और...मत सोओ, नहीं तो हड्डी खराब हो जायेगी। सुख है उनको ?

देखो, यह मनुष्य-शरीर जो प्राप्त हुआ भगवान् के शरीर से मिलता-जुलता है। 'पुरुषा धीष्णं मुदब्रह्मायलोकधीष्णं मुदम्गप देवा।' ब्रह्माजी ने और कोई शरीर बनाकर तृप्ति अनुभव नहीं किया जब मनुष्य शरीर बनाया तब उनको बड़ी तृप्ति हुई जहाँ अन्नमयकोश आदि का वर्णन आता है। वह जैसा आत्मा का स्वरूप है, पुरुष का स्वरूप वैसे ही तो 'इमं प्राप्य भजस्व माम्।' मनुष्य शरीर को प्राप्त करके मेरा भजन कर लो। 'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।' (गीता ९.३) यहाँ से मैं हस्त लभ्य हूँ। हाथ से ही पकड़ सकते हो मुझे। पर यदि फिर भी मुझे प्राप्त नहीं करोगे, तो बार-बार इस मृत्युरूप संसार में आते रहोगे इसलिए भजस्व माम्।'

अच्छा। 'भजस्वव् माम्' का अर्थ क्या है ? ...भजन करो। भजन करो माने सेवन करो। भजनं नाम रसनम्।' भजन माने स्वाद। भजन माने जुगाली करना। जुगाली करना माने बार-बार चवाना, रस लेना। जैसे बैल है, गाय है, भैंस, ऊँट है, ये पहले एक बार खा लेते हैं। घास-फूस से पेट भर लेते हैं। और इसके बाद मौज से बैठते हैं और खाये हुए को मुँह में लाकर जुगाली करते हैं, फेन निकल जाने तक चुबला-चुबलाकर उसका रस लेते हैं। तो ये भगवान् के बारे में आपने घास-फूस की तरह भर रखा है पेट में, शास्त्र सुन-सुनकर उपदेश सुनकर व्याख्यान सुनकर, अब बैठकर शान्ति से उसको याद कर-करके उसका रस लो। इसका नाम भजन है 'भजनं नाम रसनम्।' गोपालतापनीय उपनिषद् में है भजन माने स्वाद लेना।

कैसे भजन करें ? तो भजन की पाँच प्रक्रिया बतायी ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण: ।।

मन्मना भव-एक । मुद्भक्तो भव-दो । मद्याजी भव-तीन । मां नमस्कुरू-चार । मत्परायण:-पाँच । एवम् आत्मानं युक्त्वा माम् एव एष्यिसि ।

'मन्मना भव, मज्ज्ञानवान् भव । हमको जान लो—पहली बात । यह ज्ञानमार्ग हो गया । मद्भक्तो भव-यह भक्तिमार्ग हो गया । प्रेम हो गया । ये दोनों नहीं चलते हैं ? तो मद्याजी भव-मेरे लिए कर्म करो । यह कर्ममार्ग हो गया । ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग । अब बोले कि ये तीनों हमसे नहीं चलते हैं । ज्ञान के लिए तो शमदमादि सम्पत्ति चाहिए । भक्ति के लिए अनन्यता चाहिए । बिना अनन्यता के भक्ति नहीं होती है । ये जो पार्ट-टाइम काम करते हैं न ? घंटे भर इनके घर, घण्टे भर उनके घर घण्टे भर किसी तीसरे के घर । विदेशों में यह बहुत चलता है । तो आप लोग भी भगवान् की भक्ति यदि पार्ट-टाइम करना चाहते हैं तो वह बात नहीं बनेगी । जितने भी काम करो-मद्याजी-सब । जैसे बलि ने अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पित कर दिया, वैसे आत्मयाजी हो जाओ । बलि के समान अपने अहंकारपर्यन्त का यजन कर दो । एक पाँव में लोक दिया, दूसरे पाँव में परलोक दिया और तीसरे पाँव में—'पदं तृतीयं कुरू शीर्ष्णि में निजम । तीसरा पाँव मेरे सिर पर रख दो । कह दो कि तुम मेरे । बोले यह भी नहीं होता है तो ' मां नमस्कुरू ।' हाथ तो जोड़ो-भाई ।

हाथ जोड़ना भी नहीं आता है । हाथ जोड़ना बड़ी भारी चीज है । यजुर्वेद संहिता में 'नमस्कुरू' का अर्थ लिखा है—न मे इति नम: । 'नमनं नम:' यह तो पाणिनी व्याकरण का अर्थ है कि झुकने का नाम नमस्कार है । माने 'स्वापकर्षसूचनपूर्वकपरोत्कर्षसूचको व्यापार: नमनम् ।' अपने को छोटा बनाकर दूसरे को बड़ा बनाने का जो क्रिया-कलाप है उसको नम: बोलते हैं । नम: माने तुम बड़े हो, मैं छोटा हूँ । अपने को छोटा सूचित करके, सामने वाले को बड़ा बनाना इसका नाम नमस्कार है । जीव छोटा हैं, ईश्वर बड़ा है । उनके सामने नमस्कार करो । तो बस इसका नाम नमस्कार है । 'नमस्कुरु' ।

आपने सुना होगा पाण्डवगीता में—

एकोऽपि कृष्णस्य कृत: प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्य: ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।।

एक बार भी यदि श्रीकृष्ण को प्रणाम कर लिया जाय तो दस अश्वमेध यज्ञ के साथ भी उसकी तुलना मत करो । दस अश्वमेध यज्ञ छोटे हैं और एक बार का नमस्कार बड़ा है । क्यों ? जो दस अश्वमेध करता है उसको पुनर्जन्म की प्राप्ति होती है । लेकिन कृष्ण को जो प्रणाम करता है उसको संसार की पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती ।

नम्र हो जाओ भाई। कड़ा पकड़ा जाता है। नरम चीज पकड़ी नहीं जाती। जो कड़ा है, वही पकड़ा जाता है। सबसे पहले वेदान्ती जो है न, ज्ञानाभिमानी, सच्चे नहीं, उनको पकड़-पकड़कर सबसे पहले ईश्वर के सामने खड़ा किया जायेगा कि यह झूठ-मूठ अपने को सबसे बड़ा मानता था। इसका अहंकार तो टूटा नहीं। माया-मोह तो छूटा नहीं। अपने देह को इसने ब्रह्म बनाया। देह को पाप नहीं लगता, देह को पुण्य नहीं लगता। देह चाहे सङ्ग्रह करे, चाहे परिग्रह करे, चाहे दुराचार करे, चाहे सदाचार करे। इसने ब्रह्म को ब्रह्म नहीं माना, अपने देह को ब्रह्म माना। जब तक देह में अहंभाव है तब तक ब्रह्मानुभीति तो हो ही नहीं सकती। देह का भोग चाहते हो। देह का योग चाहते हो। देह के रोग से घबड़ाते हो। अरे भाई। वह तो कड़ा है। देह में पहले कड़ा हो गया है। कड़ा जो हो गया वह पहले पकड़ा जायेगा। और जो नमन करेगा, झुक जायेगा, नमस्कार करेगा, वह बस---'न कस्य उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवसतिः।' जो भगवान् के सामने सिर झुकावेगा उसको कौन सी– उन्नति प्राप्त नहीं होगी? तो 'मां नमस्कुरू।'

'इत्थं मत्परायणः।' इन चारों प्रकारों से मत्परायण बन जाओ। 'अहमेव परम् अयनं यस्य असौ मत्परायण। तुम्हारा घर कहां है? अयन माने घर होता है। जैसे रामायणम्-रामायण माने रामजीका घर, 'रामस्य अयनं रामायणम्--माने बाजार भर से लौटकर, देश-विदेश में घूमकर जिस में घर लौट आना है उसका नाम है अयन। 'परायणम्-माने अयनम्।' अब बस यहाँ से कहीं जाना नहीं है। 'अहमेव परम् अयनं यस्य—मैं ही जिसका परम घर हूँ। माने भगवान् में निकले, भगवान् में समा जाओगे। जहाँ से आये हो वहाँ पहुँच जाओगे, तब अपने घर में पहुँच जाओगे। नहीं तो यात्रा में ही रहोगे, धर्मशाला में ठहरोगे, कहीं अच्छी सराय मिली, कहीं खराब मिलेगी।' कहीं ऊच्छा भोजन मिलेगा तो कहीं खराब मिलेगा। जैसा पैसा होगा उसके अनुसार ऐसे होटल में ही जाओगे कि जहां का मैनेजर दूसरे होटल में खाने जाता हो संसार में जहां जाओगे कहीं ठो-ठिकाना नहीं हैं। अन्त में जैसे—

जैसे उड़ जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवे।
मेरो मन अनत कहां सुख पावे॥

मेरा मन दूसरी जगह कहाँ शान्ति प्राप्त करेगा? तो ये पाँच बातें कही गयीं। 'मन्मना भव' माने मज्ज्ञानवान् भवः मद्भक्तो भव' अर्थात् 'मद्विषयक प्रीतिमान्भव।' 'मद्याजी भव अर्थात 'मद्विक्तक यजनवान्भव।' 'मामेव यष्टुं शीलं यस्य असौ मद्याजी।' शील अर्थ में यह इत् प्रत्यय होता है। स्वभाव ही हो जाय कि जो काम करें, वह भगवान् के लिए करें। 'एवम् आत्मानं युक्त्वा, युङ्क्त्वा।' विपाठे कहीं कहीं युङ्क्त्वा होता है। इस प्रकार अपने आत्मा को मेरे साथ जोड़कर।

अब यहाँ ज्ञानिकों ने अपना अर्थ लिया 'आत्मानं युक्त्व मया एकीकृत्य अहं ब्रह्मास्मीति। मेरे साथ जोड़कर माने मुझमें मिलकर। और मेरे साथ जोड़कर का अर्थ यह है कि अभी तो तुम हमसे अलग हो। अभी तो वरमाला ही है न हाथ में? ब्याह तो किसी से हुआ नहीं। एक लड़की वरमाला हाथ में लेकर कॉलेज के दरवाज पर खड़ी हो जाये। इसको पहनावें कि इसको पहनावें, कि इसको पहनावें। यही तो स्थिति है। सम्पूर्ण पसन्द है किसी के बारे में तुम्हारी?

एक विवाहिता पत्नी है। अभी भी है वह। उनके पति भी हैं। तो दोनों में एक दिन बहुत झगड़ा हो गया। दोनों मेरे पास आ गये। मैंने समझाया-बुझाया। दोनों में मेल-जोल कराया। फिर मैंने कहा, 'आओ तुम लोगों का फिर से ब्याह कर दें।' अरे। पत्नी तो हाथ उठाकर चिल्लायी कि स्वामी जी दूसरी बार ब्याह करना है तो मैं इनसे हरगिज नहीं करूँगी। हमारी पसन्द की हालत यह है भाई। जान-बूझकर प्रेम-विवाह किया है और स्थिति यह है कि दुबारा इनसे नहीं। तो दुनिया में जहाँ-जहाँ यह लव-मैरेज करते-फिरते हैं न, वह अन्तिम चीज नहीं है। दुनिया से जो रिश्ते, उलफत है वो तोड़ दो। जिस सर का है ये बाल उसी सर में जोड़ दो। भगवान् के साथ ऐसा जोड़ो कि कभी टूटे नहीं।

जिस परमात्मा का यह अंश है, यह सेवक है, यह नियम्य है, यह आश्रित है, यह उपजीवक है, उस परमात्मा के साथ उसको जोड़ दो। अर्जुन ने कहा तुमसे जोड़ने से होगा क्या ? 'मामेवैष्यसि'— बोले मेरे पास आ जाओगे। अरे भाई। न जाने तुम्हारे पास कितने आये और कितने गये।' 'मामेव एऽयसि' का क्या अर्थ हुआ ? तुम्हारे पीछे-पीछे क्या हम घूमते रहें ? जहाँ-जहाँ जाओ, वहाँ-वहाँ लगे रहें ? तो श्रीकृष्ण ने कहा 'मामेवैष्यसि युक्त्वैवम्'—तुम इस प्रकार से मेरे पास आ जाओगे कि फिर दूसरे के पास जाना होगा ही नहीं। सम्बन्ध हो तो पक्का होना चाहिए।

'एवम् आत्मानं युक्त्वा मामेव। अन्ययोगष्यवच्छेदं।'—किसी भी दूसरे के साथ फिर तुम्हारा मिलना नहीं होगा। मुझे मिलोगे सो मिल जाओगे, मिले ही रहोगे। अर्जुन को तो इसमें भी थोड़ी शङ्का रह गयी। क्योंकि 'मामेवैष्यसि' जब श्रीकृष्ण ने कहा, तो अर्जुन ने कहा कि श्रीकृष्ण। तुम्हें झूठ बोलने का अभ्यास है। बचपन से ही झूठ बोलते र हो 'तो भगवान् ने कहा कि नहीं, 'सत्यं ते प्रतिजाने।' 'मामेवैष्यति सत्यं शपथपूर्वकं ते प्रतिजाने।' मैं सौगन्ध खाकर तुमसे प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम बिल्कुल मुझसे मिल जाओगे। एक हो जाओगे कभी बिछुड़ता नहीं होगा।

देखो अर्जुन। और सबसे चाहे जो मैं कहूँ, चाहे जो मैं तोड़ूँ वह बात अलग है। प्रियोऽसि मे।' तुम मेरे प्यारे हो। 'इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वल्यामि ते हितम्'॥

गीता-१८-६४।

'भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।' गीता—४-३॥ तुम तो मेरे भक्त हो और मेरे सखा हो। तुम मेरे प्रिय हो और 'इष्टऽत्ति मे दृढमिति।' मैं तो तुम्हारी सेवा-पूजा करता हूं। अर्जुन। तुम मेरे प्यारे हो। तुम मेरे सखा हो। तुम मेरे भक्त हो। मैं झूठ भी बोलूँगा तो तुम्हीं झूठ बोलने के लिए मिले हो ? नहीं, तुमसे मैं झूठ नहीं बोलता हूँ। पक्का विश्वास करो। जो मैं कहता हूँ सो ठीक है।

श्लोक तो यही है, वहां दूसरे ढंग से है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

गीता, १८-६५

'प्रतिजाने' माने प्रतिज्ञा करता हूँ। 'प्रियोऽसि मे।' तुम मेरे प्रिय हो। तुमसे मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। इसको कभी नहीं तोड़ूँगा। तुम मुझे जानो, मुझसे प्रेम करो, मेरे लिए कर्म करो, मुझे नमस्कार करो और मुझे ही अपना सच्चा घर, निवासस्थान, शरण्य समझकर अपने आपको मेरे साथ जोड़ लो। तब तुम सदा के लिए मेरे अन्दर निवास करोगे।

(स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती सेवा संस्थान वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'आनन्द बोध' से साभार गृहीत)

संसार का इतिहास उन थोढ़े से व्यक्ति का इतिहास है, जिनमें आत्मविश्वास था। यह विश्वास अन्तःस्थित देवत्व को ललकार कर प्रकट कर देता है। तब व्यक्ति कुछ भी कर सकता है सर्व समर्थ हो जाता है। असफलता तभी होती है, जब तुम अन्तःस्थ अमोघशक्ति को अभिव्यक्त करने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं करते जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, उसी क्षण उसकी मृत्यु आ जाती है।

स्वामी विवेकानन्द

देवलोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक : स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजशेर

त्रयोदशोध्याय—त्रयोदश परिच्छेद

भुवनेश्वर मठ में महापुरुषजी के द्वारा राजा महाराज की स्मृतिचारण—

स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज की दिव्य स्मृति से जड़ित भुवनेश्वर मठ में महापुरुषजी खूब आनन्द में थे। उनको अनेक समय ध्यानमग्न देखा जाता। महाराज की बात भी वे कभी-कभी कहते थे। एक दिन आश्रम के साधुओं को लक्ष्य करके उन्होंने खूब आवेगभरे स्वर में कहा था, 'यह महाराज के हाथ से तैयार किया मठ है। घर मकान, पेड़ पौधे सब कुछ अपने हाथों से किया है। यह स्थान साधन भजन के खूब अनुकूल है। उन्होंने एक समय मुझसे कहा था, "तारक दा मैंने अपना पेट काट कर बच्चों के साधन-भजन के लिए यह मठ किया हूँ जिससे इस शिव क्षेत्र में बच्चे ध्यानस्भजन करके भगवान लाभ कर सकें।" महाराज की सेवा के लिए भक्त लोग जो देते, वह अपने लिए व्यय न करके भुवनेश्वर मठ के काम में लगाते। इसीलिए उन्होंने कहा था, "अपना पेट काट कर लड़कों के लिए मठ किया है।" खाना-पीना, पोशाक आदि उनके पास जरा भी बाहुल्य नहीं था। वे तपस्वी को तरह कठोर जीवन यापन कर गए हैं। महाराज तो ठाकुर के मानसपुत्र—इसीलिए ठाकुर जैसा कहते, "भगवान लाभ ही मानव जीवन का उद्देश्य", महाराज भी वही कहते, "और तुम लोग भगवान को पुकारो—भगवान लाभ करो, नहीं तो मनुष्य होना वृथा हो जाएगा।" एवं जिससे सभी भगवान लाभ कर सके, वैसी सहायता करते। प्रेसीडेन्ट होकर भी वे तीन-चार बार तपस्या के लिए निकले थे। १९३० ई० में काशी, वृन्दावन और कनखल आदि स्थानों में तपस्या किया था साथ-ही-साथ कार्य भी। उन्होंने कहा था चौदह आना मन देकर ध्यान भजन करो, भगवान को पुकारो, और बाकी दो आना मन दे कर काम करने से बहुत-सा कार्य हो जाएगा। उन्होंने अपने जीवन में वैसा किया भी था। इसी समय वे काशी अद्वैत आश्रम में एक महीने तक थे, अधिकांश समय ध्यानस्थ होकर रहते थे। उसके बीच-बीच में थोड़ी बहुय बातचीत करते उसी से अद्वैत आश्रम और सेवाश्रम दोनों तैयार हो गया था।

काशी से वे कनखल गए एवं कल्याण ने जो नई जमीन में तीन कमरे किए थे उसी में से एक में थे। खूब ध्यान करते थे, उसी के बीच रुपया-पैसा इकट्ठा करके सेवाश्रम की जमीन का पक्का दस्तावेज कराया। इलाहाबाद से विज्ञान महाराज को बुलाकर नक्शा बनवा कर नई जमीन में मकान आदि बनाने

का कार्य प्रारम्भ किया। साथ-ही-साथ सभी को साधन-भजन में उत्साह देने लगे। उन दिनों इन सब स्थानों में रात्रि में जंगली हाथी आते थे। महाराज कहते थे कि हाथी का दल आ रहा है वह पहले से जाना जाता। गम्भीर रात्रि में पहाड़ से उतर कर यूथपति शंख बजाने की तरह एक शब्द करता, उससे सब हाथिओं को एकत्र होने के लिए इंगित किया जाता था। सब हाथियों के एकत्र होने पर तब यूथपति शूड़ उठाकर आगे-आगे (बस्ती की ओर) चलता एवं सब हाथी उसके पीछे-पीछे जाते। हाथी आग से खूब भय करते हैं। हाथी बस्ती की ओर आ रहा है जानते ही लोग जगह-जगह आग जलाते और "नगारा" बजाते। आग देख कर हाथो का दल और आगे नहीं आता। महाराज ने कहा था कि, उनके कनखल में रहते एक गम्भीर रात्रि में हाथी का दल आया था। चारो ओर "नगारा" बजते ही उन लोगों ने बाहर आग जलाकर कमरे के भीतर चले गए। आग देखकर हाथी के दल ने उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया। कनखल काम शुरू करके वे वृन्दावद चले गए।

'महाराज के जीवन में कर्म और तपस्या का अपूर्व सम्मेलन हुआ था। उन्होंने दिखा दिया एवं कहते कि जप-ध्यान छोड़कर ठाकुर और स्वामीजी के आदर्श में कार्य करना सम्भव नहीं है। ध्या-जप के द्वारा चित्त शुद्ध होने पर तभी ठाक-ठीक कर्म हो सकता है—उसके पहले नहीं। इसीलिए महाराज जप-ध्यान के ऊपर इतना Importance (गुरुत्व) देते थे। कार्य की अधिकता या काम कर रहा हूँ कह कर नियमित ध्यान-जप का समय कम करना कभी भी उचित नहीं है। जप-ध्यान का समय कम करने से कैसे चलेगा? जो लोग कामकाज के बीच में हैं उनको भी अन्ततः तीन-चार घन्टा ध्यान-जप नियम निष्ठा के साथ करना उचित है। महाराज तो अपने जीवन में कर के दिखा गए। उनकी तरह इतना कार्य एक जीवन में कौन कर सकता है? उनका जीवन तुम सभी के लिए आदर्श होना चाहिए। इतना कार्य करके भी उन्होंने अपने को जप-ध्यान के बीच मानो डूबा कर रखा था। ठाकुर की तरह उनके मन की गति उर्ध्व की ओर थी। उस मन को नीचे उतार कर उन्होंने ठाकुर का इतना कार्य किया। अवश्य ही उनका सभी कार्य लोक शिक्षा के लिए था। उन्होंने जो इतनी तपस्या की थी—वह सब लोककल्याण के लिए—उनको तपस्या का कोई प्रयोजन नहीं था। ठाकुर ने तो उनको सब कुछ दिया था—समाधि पर्यन्त। भुवनेश्वर मठ भी उन्होंने तुम लोगों के कल्याण के लिए कर गए हैं। मुझे तो इतना अच्छा लग रहा है कि यहाँ से जाने की इच्छा ही नहीं हो रही है। सब समय महाराज की बात ही याद आ रही है। यह मठ महाराज का खूब प्रिय स्थान।

महापुरुषजी ने अन्यत्र कहा है कि 'महाराज की कृपा और ठाकुर की कृपा एक ही है। ठाकुर ने जिनके ऊपर कृपा की है उनकी तो बात ही क्या, उनकी सन्तानों ने जिनके ऊपर कृपा की है उनकी भी मुक्ति निश्चित है।'

भुवनेश्वर के निर्जन परिवेश में महापुरुजी को और कुछ दिन रहने की इच्छा थी, किन्तु बेलूड़ मठ जरूरी कार्य के लिए, प्रायः डेढ़ माह बिता कर मई महीने के प्रारम्भ में मुझे लेकर बेलूड़ मठ चले आए।

जप-ध्यान के प्रसंग में महापुरुषजी—

एक दिन महापुरुष महाराज ठाकुर घर (मठ) में बैठे थे, मैंने साथ-ही-साथ तमाखू दिया, परन्तु उस समय तमाखू पीने की अवस्था नहीं थी। मठ के साधु लोग क्रमशः उनके घर में इकट्ठे हुए। एक साधु ने विनीत भाव से प्रणाम करके पूछा, 'किसी-किसी दिन ध्यान-जप करने में मन बैठता है, आनन्द भी मिलता है, और किसी-किसी दिन मन बिल्कुल नहीं बैठता है, पाँच विषय के पीछे घूमता है। इस प्रकार क्यों होता है महाराज ? मन के पीछे-पीछे दौड़ने से हैवान हो जाना पड़ता है।' साधु का आर्तस्वर देखकर महापुरुषजी खब सहानुभूति के साथ बोले, तुम्हारा हो ऐसा होता है ऐसा नहीं, सभी को पहले पहल ऐसा होता है। उसके लिए हताश होने का कोई कारण नहीं। गीता में नहीं पढ़ा है —

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याह निग्रहं मन्ये वायोखि सुष्दुकरम्॥

और इस चंचल मन को शान्त करने का उपाय भी बता देते हैं—अभ्यास योग :

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृहते॥

मन जप में नहीं बैठता है, जप-ध्यान अच्छा नहीं लगता कह कर ध्यान जप बन्द नहीं करना अथवा कम नहीं करना; वरन् बढ़ाते जाना, चेष्टा मत रोकना। मन को लक्ष्य करना कहा जाता है। चंचल मन को विषय के पीछे मत दौड़ने देना। बारम्बार पकड़ कर ध्येय वस्तु में लगाना। मन बैठ नहीं रहा है ऐसा समझ कर निराश मत होना। जब मन को अपनी चेष्टा से वश में नहीं ला सको तो ठाकुर के पास रो रोकर प्रार्थना करना। रोना जानते हो ? ठाकुर ने मुझको कहा था, ओरे, रोना खूब रोना। रोने से मन का मैला धुल जाता है। खूब रोओ।" ठाकुर की यह बात कहने के बाद मैं पंचवटी में ध्यान करने गया, थोड़ी देर बाद ऐसा रोना आया कि मैं जोर-जोर से रोने लगा, किसी प्रकार रोना रुकता ही नहीं था। उनकी तो खाली बात नहीं थी। वे साथ ही साथ भीतर में जगा देते थे। तुमको एक बात बता देता हूँ—ठाकुर का "शुद्धमपापविद्धम्" श्रीमूर्ति का ध्यान मनः संयम का सहज उपाय है।' संन्यासी—'महाराज, भगवान का नाम क्या सभी अवस्था में किया जा सकता है ? जैसे चलते फिरते, पाँच कार्य के बीच में मन ही मन क्या जप चला सकता हूँ ? महापुरुषजो खूब आवेग भरे स्वर में बोले : 'अवश्य, ऐसा कर सकते हो। जप ध्यान का कोई समय कुसमय नहीं है। सभी क्षण उनका नाम अन्तर में जप कर सकते हो। रामप्रसाद के गाने में है न—"जत शुनो कर्णपुटे, सबई भायेर मन्त्र बटे।" और "आहार करो, मने करो, आहुति दाओ श्यामा कै।" Deification (ईश्वरीय भाव का आरोप) कर लेना—सभी कार्य, सभी प्रचेष्टा—यह खूब वड़ी साधना है। एक घंट, दो घंटा ध्यान-जप या माला जप करना यथेष्ट नहीं है। सर्वक्षण, प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ श्री भगवान का नास जप चलाना होगा। "शयने प्रणाम ज्ञान, निद्राय करो माके ध्यान, नगर फेरो मने करो प्रदक्षिण श्यामामाके। "यह खूब उच्च अवस्था है। तुलसी दास के एक दोहे में है—"मन मन जप तो बलिहारी जाई।" मन मन में जप श्रेष्ठ उपासना है। वही जप सर्वक्षण चलना होगा। भगवान का नाम करने का अर्थ है—भगवान को लेकर रहना, भगवान के साथ रहना। ठाकुर कहते, "नाम-नामी अभेद" नाम और रूप - सर्वक्षण श्री भगवान का नाम मन मन में जप

करने का अर्थ है सर्वक्षण भगवान के साथ रहना। मन-ही-मन जप करने को इसीलिए श्रेष्ठ कहा गया है। लोगों को दिखाने के लिए जप—उससे नुकसान होता है। फलस्वरूप नाम-यश की आकांक्षा बढ़ जाती है। लोग कहेंगे खूब बड़े जापक हैं, खूब बड़े साधक, खूब जप-ध्यान करते हैं। यह अहंकार बहुत खराब है—साधक का सर्वनाश करता है। ठाकुर कहते, "मुक्ति हवे कवे अहं जाबे जबे। अतएव अहं के नाश करने का चेष्टा करना होगा। प्रार्थना करना होगा। खूब ध्यान-जप करता है इधर मन पड़ा है पाँच भोग्य विषयों में। ठाकुर चील-शकुनी की उपमा देकर बोले हैं, "चील शकुनि खूब ऊँचू ते उड़े किन्तु तादेर दृष्टि थाके भांगाड़े।" मन को लेकर ही सब बात है। मन से बद्ध है मन से मुक्त है। मन कहाँ है देखना होगा। सब समय मन की गतिविधि की ओर नजर रखना पड़ेगा। साथ ही साथ उनका स्मरण मनन सब समय करना होगा। गीता में है न—"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" अभ्यास योग। वैराग्य की सहायता से अभ्यास क्रम से मन को सर्वक्षण सर्वावस्था में श्री भगवान से युक्त रखना होगा।

संन्यासी प्रणत होकर आवेग में भर कर बोले—आशीर्वाद करिये, महाराज, जिस इस अवस्था में स्थिर हो सकूँ। हमलोगों ने ठाकुर को देखा नहीं, उनकी कृपालाभ करने का सौभाग्य हम लोगों को नहीं हुआ। आपलोग के पार्षद इसीलिए आप से आशीर्वाद की भिक्षा करता हूँ।'

महापुरुषजी—तुम लोग ठाकुर के आश्रित हो। उनके चरणों में देह मन प्राण सब कुछ अर्पण कर संसार त्याग किया है। तम लोगों को अदेय हमारे पास कुछ भी नहीं है। इसीलिए इतनी बात बोला। हमलोग वृद्ध साधु, ठाकुर के दास। हमलोगों की बात सुनकर चलने से तुमलोगों का कल्याण होगा। बेटा, हमलोग लोगों को धोखा देने नहीं आए हैं। ठीक-ठीक बात कहते हैं। जीव-जगत की कल्याण कामना छोड़ कर और कोई चिन्ता हमलोगों को नहीं है। ठाकुर की बातें कहूँगा इसीलिए उन्होंने अभी भी बचा कर रखा है। तुम लोगों ने ठाकुर को देखा नहीं, किन्तु हमलोगों को तो देखा है। तुम भी कम भाग्यवान नहीं हो। जिन्होंने ठाकुर को नहीं देखा है, उनका पवित्र संग करने का सुयोग नहीं हुआ है, किन्तु हम लोगों को देखा है हम लोगों के भीतर से उनको देखने की चेष्टा करते हो, वे भी जगत के कोटि-कोटि लोगों से अधिक भाग्यवान है। बहुत जन्मों के पुण्यफल से ठाकुर के पार्षदों का दर्शन एवं संग लाभ होता है। कहते-कहते उनका कंठस्वर क्रमशः गम्भीर हो गया। वे चुपचाप बैठे रह गए। साधु लोग उसी अवस्था में उनको प्रणाम कर चले गए।

गदाधर आश्रम

राजा महाराज के आदेश से १९२० ई० में नवम्बर महीने में कलकत्ता के भवानीपुर अंचल में आदि गङ्गा के तीर पर बेलूड़ मठ के शाखा रूप में महापुरुष महाराज ने एक आश्रम की स्थापना की। दाता के मृत पुत्र के नामानुसार इस आश्रम का नाम गदाधर आश्रम" रखा गया। श्री श्री मा के जीवित अवस्था में इस आश्रम-घर का दान पत्र का रजिस्ट्री कार्य सुसम्पन्न हुआ। श्री श्री मां तब बागबाजार मठ में अन्तिम रोग शय्या पर थी। इस आश्रम-स्थापन संवाद से उन्होंने आनन्द प्रकाश करके कहा था—कालीक्षेत्र में आदि गङ्गा के किनारे ठाकुर का आश्रम होगा अच्छा होगा। अच्छी होकर वहाँ कुछ दिन जाकर रहूँगी। श्री श्री मां स्थूल शरीर में गदाधर आश्रम में नहीं किन्तु यह आश्रम निःसन्देह उनके आशीर्वाद से पवित्र हुआ।

गदाधर आश्रम में जगद्धात्री पूजा में महापुरुषजी—

१९२३ ई० भवानीपुर गदाधर आश्रम में प्रतिमा में जगद्धात्री पूजा का आयोजन हुआ था। आश्रमाध्यक्ष स्वामी कमलेश्वरानन्द के विशेष अनुरोध से महापुरुषजी इस उपलक्ष में पच दिन गदाधर आश्रम में थे। जगद्धात्री पूजा के पूर्वदिन महापुरुजी मुझको साथ भेकर गदाधर आश्रम में आए एवं प्रतिमादि का दर्शन कर खूब आनन्दप्रकाश किया। उनके शुभागमन के सम्वाद से आश्रम में बहुत से भक्त इकट्ठा हुए थे। सन्ध्या ठाकुर आरती में वे उपस्थित रहे। स्थानीय भक्त सनत् बाबू (बाद में स्वामी ध्यानेशानन्द) के परिचालन में पखावज, क्लियरनेट, बेहाला और हारमोनियम इत्यादि विविध वाद्य सहयोग से 'खन्डन-भवबन्धन' इत्यादि आरती-भजन ने सुन्दर गम्भीर परिवेश की सृष्टि किया था। महापुरुजी पखावज के साथ आरती-भजन सुनकर खूब आनन्दित हुए थे। आरती के बाद अपने घर में आकर मुझको बोले: 'देखो, पखावज वजाकर आरती सुन कर मुझे बहुत आनन्द हुआ। वही स्वामीजी की बात याद आ रही है—उन्होंने आरती-भजन को रचना करके हमलोगों को सिखाया था एवं स्वयं पखावज वजाकर हमलोगों को लेकर आरती गाते थे। आज बहुत दिन बाद पखावज के साथ आरती सुनकर मेरे हृदय के भीतर अपूर्व अनुभव हुआ! उन दिनों को बात याद आ रही है। पखावज के साथ हारमोनियम वाजा खूब जमा था। तुम सनत के पास से आरती के साथ हारमोनियम बाजा सीख सकते हो? और यहाँ सर्वमंगलमंगल्ये" यह देवी मणाम भी नित्य गाना होता है। तुम यह सब हारमोनियम बजा कर गाना सीख लो।' मैंने आनन्द से सम्मति बताई एवं दूसरे दिन से रोज सायं हारमोनियम बजाकर आरती गाना सनत बाबू से सीख लिया।

स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज की मन्त्र शिष्या भवानीपुर की एक महिला की इच्छा हुई कि ठाकुर की एक बैठी हुई संगमरमर की मूर्ति 'उत्सब विग्रह रूप में' मठ के प्रांगण में प्रतिष्ठा करे। उसी के अनुसार राजा महाराज को अनुमति से उनलोगों ने झामापुकुर के एक शिल्पी से ऐसी संगमरमर की मूर्ति बनवाने की व्यवस्था की। माडल तैयार हो गया, राजा महाराज ने देख कर अनुमोदन किया। इटालियन मार्बल मूर्तिकार ने का काम बढ़ने लगा। सिर और छाती तैयार होने पर भी राजा महाराज ने अनुमोदन किया। मूर्ति काटने का काम आगे चल पड़ा, इसी बीच महाराज के आकस्मिक देह त्याग से काम कुछ दिन बन्द हो गया। बाद में जब मूर्ति काटने का प्राथमिक कार्य जब पूरा हुआ तब देखा गया कि सारे शरीर पर चीता बाघ की तरह काला-काला घराब दाग निकल आया है।

मूर्ति की यह अवस्था देखकर भक्तगण विशेष चिन्तित होकर मतामत लेने के लिए बेलूड़ मठ के अधिकारियों की शरण लिया। इस उपलक्ष में महापुरुष महाराज, शरत महाराज, खोका महाराज और मास्टर महाशय अन्नपूर्णापूजा के दिन देखते जाएँगे एवं मूर्ति देखकर वे सभी भक्त के घर में भोजन करेंगे ऐसा निश्चित हुआ। इस व्यवस्था के अनुसार अन्नपूर्णापूजा के दिन सबेरे नौ बजे के बाद पूजनीय शरत महाराज के आने के साथ-ही-साथ गाड़ी से सभी लोग शिल्पी के कारखाना गए। मैं भो सेवक के हिसाब से उन लोगों के साथ गया। कारखाना में मूर्ति देखकर सभी दुःखी हुए। विभिन्न प्रकार से देखकर शरत महाराज और महापुरुषजी निम्न स्वर में आलाप और आलोचना कर के शिल्पी से उसके प्रतिकार का उपाय है या नहीं यह पूछने पर उसने कहा कि, रंग करना छोड़ कर और कोई उपाय नहीं है। बाद में

मतामत बतायेंगे कहकर वे लोग भक्त के घर चले गए। भक्तगणों ने विभिन्न उपचार से ठाकुर के पार्षदों की सेवा की। बेलुड़ मठ के नहीं लेने से यह मूर्ति बहुत दिन कारखाना में ही पड़ी थी। इधर शिल्पी मूर्ति का मूल्य लेकर मूर्ति उठा ले जाने के लिए भक्त लोगों से अनुरोध करने लगा। भक्त लोग मुश्किल में पड़ गये—मूर्ति कहाँ रखेंगे? इधर काशी अद्वैताश्रम में एक पत्थर का बड़ा मन्दिर हो रहा है यह समाचार पाकर भक्तगण मूर्ति को इस मन्दिर में प्रतिष्ठित करने लिए अद्वैताश्रम के तत्कालीन अध्यक्ष की सम्मति से १९३५ ई० में मूर्ति को अपने खर्च से काशी पहुँचा दिया एवं सेवा पूजा के लिए छः रुपया महीना देने की व्यवस्था हुई। दूसरे वर्ष मूर्ति रंग करके अद्वैताश्रम के नए प्रस्तर मन्दिर में वेदी पर स्थापित हुई।

स्वामी निर्वाणानन्द महाराज के पास इस मूर्ति के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में सुना था कि, राजा महाराज के निर्देश के अनुसार इस मूर्ति का गला और सिर तैयार हुआ था केशव सेन के घर में ठाकुर की जो खड़े हुए समाधिस्थ मूर्ति है उसकी तरह सब लोगों के द्वारा पूजित बैठी हुई मूर्ति है उसके तदनुरूप। इसी भाव के अनुसार प्रथम माडल तैयार किया गया। महाराज ने इस माडल का अनुमोदन किया और उसी मोडेल के अनुसार मूर्ति की खोदाई हुई।

●

संसार मानो दूध और जल के मिश्रण के जैसा है। उसमें ईश्वरीय आनन्द और विषय दोनों है। तुम हंस बनकर दूध-दूध पी लो और पानी छोड़ दो।

—श्री श्री रामकृष्ण

भगवान् अपने पर आत्मीय है। जितनी तीव्रता से व्यक्ति साधना करता है, उतनी जल्दी वह भगवान को पा लेता है।

—माँ शारदा

धर्म का मूल उद्देश्य है, मनुष्य को सुखी करना। जोधर्म गरीबों का दुःख नहीं मिटाता, मनुष्य को देवता नहीं बनाता, वह भी क्या धर्म है?

—स्वामी विवेकानन्द

बोध कथा

होश खोना हो तो पियो !

वल्कल वस्त्र और मृगचर्म पहने हुए जटाधारी ब्राह्मण राजा सर्वमित्र के दरबार में पहुँचा। उसके हाथ में एक सुरापात्र था। जाते ही वह बोला : "ले लो, ले लो यह शराब ! जिसे लोक-परलोक की चिन्ता न हो, मौत का डर न हो, वह इसे ले सकता है, जरूर ले सकता है।"

राजा बड़ा शराबी था। खुद पीता, दूसरों को भी पिलाता। राज्यभर में अंधेर मचा हुआ था।

ब्राह्मण का यह वचन सुनकर और उसके चेहरे पर तेज देखकर राजा ने उसे प्रणाम किया। कहा : "ब्राह्मण देवता ! आप तो खूब सौदा कर रहे हैं। सभी तो अपनी चीज के गुण बताते हैं, पर आप तो उसके दोष बता रहे हैं। बड़े सत्यवादी हैं आप !"

ब्राह्मण बोला : "सर्वमित्र ! जो इसे पीता है, अपना होश खो बैठता है। उसे चाहे जो खिला दो। सड़कपर वह लड़खड़ाकर गिरता है। कुत्ते उसके मुँह में पेशाब करते हैं। ले लो, ले लो यह शराब ! तुम इसे पीकर सड़क पर नंगे नाचोगे। तम्हें बहू और बेटी में कोई भेद न जान पड़ेगा। स्त्री इसे पीकर पति को पेड़ में बाँधकर कोड़े लगवायेगी। इसे पीकर लाखवाले खाक में मिल जाते हैं। राजा लोग रंक बन जाते हैं। पाप की माँ है यह शराब ! ले लो, ले लो यह शराब !"

सर्वमित्र ब्राह्मण के पैरों पर गिर पड़ा। बोला "धन्य हैं महाराज ! आपने मुझे शराब के सब अवगुण बता दिये। मैं अब कभी शराब न पिऊँगा। आपने मुझे इसके दोष ऐसे अच्छे ढंग से समझाये, जैसे बाप बेटे को समझाता है, गुरू चेले को। मैं पाँच गाँव, सौ दासियाँ और दस रथ देता हूँ आपको पुरस्कार में।"

ब्राह्मण रूपधारी बोधिसत्व बोले। "मुझे कुछ न चाहिए। तुम्हारा पतन मुझसे नहीं देखा जाता इसीसे मै ऐसा रूप धरकर तुम्हें बचाने आया।

"अपवित्र कल्पना भी उतनी ही बुरी होती है जितना अपवित्र कर्म।"

—स्वामी विवेकानन्द

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।